ISSN 0972 - 1746

सी.एस.आई.आर.-आई.आई.टी.आर. राजभाषा पत्रिका

विषविज्ञान संदेश

2012

अंक 20 वर्ष 2012

सी.एस.आई.आर.-भारतीय विषविज्ञान अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

संविधान में हिन्दी भाषा के विकास के लिए निर्देश

351, संघ का यह कर्त्तव्य होगा कि वह हिन्दी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करें ताकि वह भारत की सामाजिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिन्दुस्तानी के और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं के प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए और जहां आवश्यक या वांछनीय हो वहां उसके शब्द-भण्डार के लिए मुख्यतः संस्कृत से और गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करें।

सी.एस.आई.आर.–आई.आई.टी.आर. राजभाषा पत्रिका

विषविज्ञान संदेश

2012

सी.एस.आई.आर.–भारतीय विषविज्ञान अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

राजभाषा कार्यान्वयन समिति

डॉ. के.सी. गुप्ता	अध्यक्ष एंव निदेशक
श्री मुकुन्द सहाय	सदस्य एवं राजभाषा अधिकारी
श्री बी.के. मिश्रा	सदस्य
श्री विनय कुमार	सदस्य
डॉ. देवेंद्र परमार	सदस्य
श्री बी.डी. भट्टाचारजी	सदस्य
डॉ. जी.सी. किस्कू	सदस्य
श्री निखिल गर्ग	सदस्य
डॉ. एन. मणिक्कम	सदस्य
श्री जगन्नाथ	सदस्य
श्री प्रदीप कुमार	सदस्य सचिव

सम्पादक मण्डल

डॉ. आर.सी. मूर्ति	संपादक
डॉ. आलोक पाण्डे	सह-संपादक
डॉ. डी.कार. चौधरी	सदस्य
डॉ. एस.पी. पाठक	सदस्य
डॉ. कैलाश चन्द्र खुल्बे	सदस्य
डॉ. (श्रीमती) प्रीति चतुर्वेदी भार्गव	सदस्य
श्रीमती सुमिता दीक्षित	सदस्य
श्री राम नारायण	सदस्य
डॉ. चन्द्र मोहन तिवारी	सदस्य

प्रकाशक

सी.एस.आई.आर.-भारतीय विषविज्ञान अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

महात्मा गाँधी मार्ग, पोस्ट बाक्स - 80, लखनऊ - 226 001

पत्र व्यवहार का पता :-

निदेशक

सी.एस.आई.आर.-भारतीय विषविज्ञान अनुसंधान संस्थान

महात्मा गाँधी मार्ग, पोस्ट बाक्स-80 लखनऊ - 226 001

दूरभाष : (0522) 262822, 2621856, 2620106

फैक्स : +91-522-2628227

ई-मेल : rpbdiitr@yahoo.com, director@iitrindia.org

वेबसाइट : www.iitrindia.org

(पत्रिका में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने विचार हैं)

पत्रिका के संदर्भ में समस्त जानकारी के लिए कृपया संपर्क करें :-

डॉ. आर.सी. मूर्ति

संपादक

राजभाषा पत्रिका ''विषविज्ञान संदेश'' एवं

प्रमुख, विश्लेषणात्मक रसायन प्रभाग

सी.एस.आई.आर.-भारतीय विषविज्ञान अनुसंधान संस्थान

महात्मा गाँधी मार्ग, पोस्ट बाक्स-80, लखनऊ - 226 001

दूरभाष : 2620107, 2620106, 2627586, 2614118, 2627389

फैक्स : +91-522-2628227

विषय सूची

संरक्षक की ओर से iii

संपादकीय iv

वैज्ञानिक लेख

नैनोपेस्टीसाइड (परासूक्ष्म पीड़कनाशी) : कृषि क्षेत्र में आशा की नयी किरण 01
एम.के. श्रीवास्तव, आर.पी.सिंह और एल.पी. श्रीवास्तव

माइक्रोसेटेलाइट-पीसीआर विधि से चूहों के प्रजनन कॉलोनी की आनुवंशिक निगरानी 04
डॉ महादेव कुमार

बाजार में उपलब्ध्य फल कितने सुरक्षित??? 08
डा. डी.के. सक्सेना

दैनिक जीवन में व्यक्तिगत देखभाल के प्रसाधन एवं उनके हानिकारक प्रभाव 14
डा. देवेन्द्र कुमार पटेल, स्मिता पांचाल एवं रूपिन्दर कुमारी

फ्लोराइड तथा पर्यावरण स्वास्थ्य 18
मीरा दुबे एवं जी.सी. किश्कू

''वैज्ञानिक तकनीकियों का विकास एवं कीटनाशकों का विश्लेषण'' 24
सपना यादव, आशुतोष कु. श्रीवास्तवा, सत्यजीत राय, स्वाति सचदेव और लक्ष्मण प्रसाद श्रीवास्तव

खाद्य संदूषण एवं मिलावट - कितने सुरक्षित हम 32
सुमिता दीक्षित एवं मुकुल दास

पर्यावरणीय रसायन मध्यस्थ पुरुष प्रजनन विषाक्तताः ड्रासोफिला एक वैकल्पिक प्रतिरूप जीव 41
प्रज्ञा प्रकाश एवं डी. कार. चौधरी

नगरीकरण का पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभावः मानव जाति के भविष्य पर एक कठिन संकट 44
सौरभ द्विवेदी, पुरुषोत्तम त्रिवेदी, डा. अनिल कुमार पांडे

जलवायु परिवर्तन एवं आपदा : समस्या व समाधान 49
ऋचा आर्या, पुरुषोत्तम त्रिवेदी, मोहम्मद यूनुस, अनिल कुमार गुप्ता

हीट-शॉक प्रोटीन्स आण्विक संरक्षक (''फल मक्खी से विष-विज्ञान तक'' एक वृत्तांत) 52
आशुतोष पाण्डेय एवं डी. कार. चौधरी

सौंदर्य प्रसाधनों का मानव स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव 55
अंकित वर्मा, मोहन चंद पन्त' एवं रतन सिंह राय

घरों में आंतरिक वायु गुणवत्ता का महत्व 59
अल्ताफ हुसैन खान

कीटनाशकों का महत्त्व एवं इनके पर्यावरण पदार्थों में प्रक्रमण हेतु एक सरल विधि : क्यूचर्स 63
पुरुषोत्तम त्रिवेदी, अभिषेक, सत्यजीत, प्रगति, लक्ष्मण प्रसाद श्रीवास्तव

संरक्षक की ओर से

डॉ. के.सी. गुप्ता
संरक्षक : राजभाषा पत्रिका एवं निदेशक
सी.एस.आई.आर.-भारतीय विषविज्ञान अनुसंधान संस्थान
लखनऊ

आपके समक्ष राजभाषा पत्रिका 'विषविज्ञान संदेश' का 20वां अंक प्रस्तुत करते हुये मुझे अत्यंत प्रसन्नता हो रही है। मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि राजभाषा हिन्दी के माध्यम से विषविज्ञान सम्बन्धी सूचना एवं जानकारी पाठकों तक पहुंचेगी। यद्यपि हिन्दी हमारी राजभाषा है फिर भी ज्ञान और विज्ञान का प्रचार और प्रसार हिन्दी के माध्यम से जनसामान्य तक पर्याप्त रूप से नहीं पहुँच रहा है।

इस पत्रिका का प्रकाशन इसी उद्देश्य से किया जा रहा है, जिससे वैश्विक स्तर पर हो रहे वैज्ञानिक अनुसंधान, प्रौद्योगिक विकास, पर्यावरण संरक्षण, जैव विविधता एवं स्वास्थ्य सुरक्षा, जलवायु परिवर्तन एवं नये आयाम जैसे नैनो मेटीरियल विषाक्तता अध्ययन आदि की नई जानकारियां पाठकों तक पहुँच सके। इसी आशय से पत्रिका के इस अंक में वैज्ञानिकों, प्रौद्योगिकी विदों और शोधकर्ताओं द्वारा लिखे गये उत्कृष्ठ लेख सम्मिलित किये गये हैं जिसमें जनमानस वैज्ञानिक शोध परिणामों सम्बन्धी प्रेरणादायक सूचनायें प्राप्त कर सके।

यह पत्रिका विगत कई वर्षों से निरंतर भारत सरकार के राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय के अंतर्गत नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति द्वारा अपने उत्कृष्ठ प्रस्तुतीकरण के फलस्वरूप पुरस्कृत होती रही है। इसके लिये पत्रिका के सम्पादक मंडल, लेखकों तथा अन्य सहयोगियों को हार्दिक बधाई।

हमें विश्वास है कि 'विषविज्ञान संदेश' का प्रस्तुत अंक पाठकों को उपयोगी जानकारी, सूचना तथा संस्थान के विभिन्न कार्यकलापों से परिचित करायेगा। मुझे यह भी विश्वास है कि पत्रिका में प्रकाशित लेख आपके लिये मनोरंजक, वैज्ञानिक दृष्टि से उपयोगी, ज्ञानवर्धक एवं उद्‌देश्य पूर्ण होंगे। इस पत्रिका के संकलन एवं प्रकाशन से सम्बन्धित वैज्ञानिक, अधिकारी, कर्मचारी एवं संपादक मंडल के सदस्य बधाई के पात्र हैं जिन्होंने अपना सराहनीय योगदान दिया।

मैं इस पत्रिका के उज्जवल एवं सफल भविष्य की कामना करता हूँ।

सम्पादकीय

डॉ. आर.सी. मूर्ति
संपादक : विषविज्ञान संदेश
वरिष्ठ प्रधान वैज्ञानिक
सी.एस.आई.आर.-भारतीय विषविज्ञान अनुसंधान संस्थान
लखनऊ

विज्ञान के क्षेत्र में बहुआयामी विकास के साथ-साथ इसके ज्ञान का जनमानस में प्रचार एवं प्रसार राजभाषा हिन्दी के माध्यम से करना आज एक बड़ी चुनौती है। भारतीय विषविज्ञान अनुसंधान संस्थान, लखनऊ इस चुनौती को स्वीकार करते हुये गत दो दशकों से विषविज्ञान सम्बन्धी सूचनाओं एवं जनोपयोगी ज्ञानकारियों को राजभाषा के माध्यम से जनसाधारण तक पहुँचाने के उद्देश्य से 'विषविज्ञान संदेश' वैज्ञानिक पत्रिका प्रकाशित कर रहा है। चूँकि इस देश की अधिकांश जनसंख्या अल्पशिक्षित है, इसलिये किसी विदेशी भाषा में उपलब्ध वैज्ञानिक जानकारी से वंचित रह जाती है। इस पत्रिका के प्रकाशन का यही उद्देश्य है कि हमारी वैज्ञानिक शोध सूचनायें एवं ज्ञान को निम्नतर स्तर के पाठकों तक पहुंचाया जा सके जिससे उनके स्वास्थ्य जीवन तथा पर्यावरण में सुधार हो।

चूँकि वैज्ञानिक शोध मूलतः व्यक्ति के स्वतंत्र चिंतन का प्रतिफल होता है और किसी का चिंतन तथा विचार उसकी मातृभाषा में ही सृजित होता है, इसलिये ज्ञान विज्ञान की अधिकतम सुग्राहिता भी उसकी मातृभाषा में ही होती है। इससे स्पष्ट है कि 'विषविज्ञान संदेश' पत्रिका राजभाषा हिन्दी के माध्यम से शोधकर्त्ताओं, विद्यार्थियों एवं अन्य पाठकों तक विविध वैज्ञानिक सूचनाओं एवं शोध परिणामों को पहुँचाने में सफल रही हैं। इसके परिणाम स्वरूप भारत सरकार राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय तथा नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति द्वारा विगत में इस पत्रिका को पुरस्कृत किया जाता रहा है जिसके लिये संपादक मंडल के सदस्य, सहयोगी तथा लेखकगण प्रशंसा के पात्र हैं।

इस पत्रिका के सफल प्रकाशन हेतु हम इस संस्थान के निदेशक डा. के.सी. गुप्ता के संरक्षण मार्गदर्शन एवं कुशल नेतृत्व के अत्यंत आभारी हैं।

मैं संपादक मंडल के सभी सदस्यों सहित उन सभी वैज्ञानिकों, अधिकारियों, कर्मचारियों एवं सहयोगियों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने निःसंकोच इस पत्रिका के प्रकाशन में अपना अमूल्य योगदान प्रदान किया।

सद्भावनाओं सहित।

हिन्दुस्तान एरोनॉटिक्स लिमिटेड
उपसाधन प्रभाग, लखनऊ

भारत सरकार
राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय
नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति

सत्यमेव जयते

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि ...भारतीय विषविज्ञान अनुसंधान संस्थान... ने जून/दिसम्बर ...2012... को समाप्त छमाही अवधि में ...पत्रिका प्रकाशन एवं हिन्दी कार्यशाला के आयोजन (विष विज्ञान संदेश - प्रथम)... का सराहनीय कार्य किया है।

राजभाषा कार्यान्वयन हेतु इस कार्यालय के अधिकारियों/कर्मचारियों का यह प्रयास अत्यंत प्रशंसनीय है।

24/12/2012

(संजय कुमार पाण्डेय)
सचिव
नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति
एवं
उप प्रबंधक, मानव संसाधन
(सुविधा प्रबंधन-राजभाषा)
एच.ए.एल., उपसाधन प्रभाग, लखनऊ

(चन्द्र कैलाश विश्वकर्मा)
अध्यक्ष
नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति
एवं
महाप्रबंधक
एच.ए.एल., उपसाधन प्रभाग,
लखनऊ

नैनोपेस्टीसाइड (परासूक्ष्म पीड़कनाशी) : कृषि क्षेत्र में आशा की नयी किरण

एम.के. श्रीवास्तव, आर.पी.सिंह और एल.पी. श्रीवास्तव
पेस्टीसाइड टाक्सीकोलाजी लैव, सी.एस.आई.आर.-भारतीय विषविज्ञान अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

कीटनाशक / पीड़कनाशी का प्रयोग कृषि के क्षेत्र में कीटों को नियन्त्रित एवं फसलों का उत्त्पादन बढ़ाने के लिए किया जाता है। प्राचीनतम रासायनिक कीटनाशक काफी विषैले और पर्यावरण को प्रदूषित करते थे। समय-समय पर अत्यधिक फसल उत्पादन के लिए और पर्यावरण को बिना प्रदूषित किये, विभिन्न प्रकार के कीटों को नियन्त्रित करने के लिए कीटनाशक उत्पादित किये जाते रहे हैं। उनमें से एक सुरक्षित बायोपेस्टीसाइड्स (जैव कीटनाशक) जिसे चतुर्थ जनरेशन पेस्टीसाइड भी कहा जाता है, बाजार में उपलब्ध होने के बावजूद प्रयोग में नहीं लाया जा रहा है। बायो-पेस्टीसाइड एक जैविक उत्पाद होने के कारण मानव एवं वातावरण पर सूक्ष्म प्रभाव डालता है। सामान्यतया बायोपेस्टीसाइड, माइक्रोवियल (सूक्ष्म जैविक), प्लान्ट ओरिजिन (पादप मूल) एवं बायोकेमिकल (जैव रासायनिक) कीटनाशक होते हैं। मानव स्वास्थ्य एवं पर्यावरण की दृष्टता से बायोपेस्टीसाइड्स काफी लाभप्रद है। परन्तु कम विषाक्तता होने की वजह से बहुत से कीटों में इम्यूनिटी (प्रतिरक्षा) पैदा हो जाती है। बायोपेस्टीसाइड का शीघ्रतः वातावरण में जैव विन्मीकरण (बायोडीग्रेड) हो जाता है। इसके फलस्वरूप बायोपेस्टीसाइड का छिड़काव कई बार करना पड़ता है। सभी कीटों में इसका तुरन्त प्रभाव न होने की वजह से कृषि क्षेत्र में इसका उपयोग कम हो रहा है। इन्हीं सब कमियों की वजह से आजकल नैनोपेस्टीसाइड (परासूक्ष्म पीड़कनाशी) बनाये जा रहे हैं। नैनोपेस्टीसाइड्स आधुनिकतम नैनोटेक्नोलोजी का प्रयोग करके पूरे विश्व में बनाया जा रहा है। नैनोपेस्टीसाइड कृषि के क्षेत्र में अधिक उत्पादकता एवं कीट नियन्त्रण के लिए आधुनिकतम उपगम्य (एप्रोच) माना जा रहा है।

नैनो शब्द की उत्पत्ति ग्रीक शब्द ''डवार्फ''' से हुआ है, नैनो शब्द का मतलब 10^{-9} अथवा किसी भी वस्तु का एक बिलियन भाग (सौ करोडवां भाग)। नैनोटेक्नालॉजी के क्षेत्र में नैनोपेस्टीसाइड के उत्पादन एवं उपयोगिता का लक्ष्य सूक्ष्मकण (नैनोपारटिकल) के आकार एवं गुण के महत्व को दर्शाता है। जब सूक्ष्मकण का आकार नैनो रूप में (1-100 nm) आता है तो इसका गुण एवं स्वभाव क्वान्ट्म साइज इफेक्ट की वजह से बदल जाता है। उदाहरण स्वरूप जब किसी तत्व का आकार नैनोमीटर में हो जाता है तो उसका सरफेस एरिया, वालूम रेशियो से ज्यादा होने की वजह से उसका मैकेनिकल, इलेक्ट्रिकल और आप्टीकल गुण बदलने लगता है। इसी विशेष लक्षण को ध्यान में रखकर नैनोपेस्टीसाइड का उत्पादन किया जा रहा है। नैनोपेस्टीसाइड अधिकतर नैनो इमल्सन, नैनोकैप्सूल, मेटल नैनोपारटिक्ल्स का पालीमर फारमुलेशन में पाये जाते है।

अधिकतर नैनोपेस्टीसाइड नैनो इनकैप्सुलेशन द्वारा बनाये जा रहे है। पेस्टीसाइड का नैनोइनकैप्सूलेशन कम से कम खुराक (डोसेज़) और

ज्यादा से ज्यादा कीटों पर प्रभाव के लिए किया जाता है। इनकैप्सूलेशन विधि में पेस्टीसाइड्स के नैनोमैट्रिक्स कोट को कृत्रिम रूप से इस तरह संश्लेषण (सिन्थीसाइज) किया जाता है जिससे पेस्टीसाइड अपने लक्षीय (टारगेटेड) वातावरण जैसे निश्चित पी. एच. कन्डीशन व तापमान में रिलीज हो सके। उदाहरण स्वरूप नैनोइनकैप्सूलेटेड पेस्टीसाइड कीड़ों की आँतो मे तभी रिलीज होते है जब संश्लेषित (सिन्थेसाइज्ड़) नैनोमेट्रिक्स उन कीड़ो के आँतो के वातावरण में घुल जाये और इस प्रकार नैनोपेस्टीसाइड धीरे-धीरे अपना प्रभाव कीटों पर दिखाने लगते है और अन्त में कीट मर जाते है। नैनोपेस्टीसाइड अलग-अलग नैनोमेटेरियल से बनाया जाता है और चयनित (सेलेक्टिव) कीटों के लिए प्रयोग में लाते है। पुराने कीट नाशकों की अपेक्षा नैनोपेस्टीसाइड के खुराक (डोसेज) काफी कम मात्रा में प्रयोग किये जाते है जिसकी वजह से विषैले पदार्थो का प्रदूषण वातावरण में कम होता है। कुछ पेस्टीसाइड का इनकैप्सूलेसन इस प्रकार होता है जो छिड़काव करने पर पौधों की सतह पर अवशोषित (ऐबजार्ब) हो जाता है और धीरे धीरे बाहर रिलीज होकर कीटों को समाप्त करता है। इस प्रकार अगर नैनोपेस्टीसाइड का प्रयोग सफल होता है तो केमिकल पेस्टीसाइड का प्रयोग कृषि क्षेत्र में बार बार नही करना पड़ेगा। नैनोपेस्टीसाइड कृषि क्षेत्र के लिए एक लाभप्रद लक्ष्य है जो रासायनिक कीटनाशकों की समस्या को दूर करता है।

नैनोपेस्टीसाइड के सेफ्टीटेस्टिंग और रेगूलेशन प्रोटोकॉल (अभिलेख) के अभाव की वजह से इसका खतरा उपभोक्ताओं, किसानों और गाँव में रहने वालों के ऊपर बराबर बना रहता है। नैनोपेस्टीसाइड में नैनोपारटिक्ल्स के सूक्ष्म आकार एवं अत्याधिक धुलनशीलता की वजह से भूमि, पानी के स्त्रोत एवं खाद्य श्रृंखला में इसके टॉक्सिन आसानी से पहुँच सकते है। दिसम्बर 2011 में यू.एस. इनवायरेनमेन्टल प्रोटेक्शन एजेन्सी (ई.पी.ए.) ने पहला नैनोपेस्टीसाइड एप्रूव किया हे। यह नैनोपेस्टीसाइड स्विटजरलैन्ड द्वारा बनाया गया ऐन्टीमाइक्रोबियल नैनो सिल्वर प्रोडक्ट है। इसका प्रयोग फैबिक्स को कीटों से बचाने के लिए किया जाता है। ई.पी.ए. ने इसे चार वर्ष के लिए प्रारम्भ स्वरूप अनुबन्धित किया है जिसे हाइक (Heiqe) मटेरियल्स ए.जी.एस.-20 के नाम से जाना जाता है। यह उत्पाद नैनोसिल्वर और नैनोस्केल सिलिका का मिश्रण है जिसे आमतौर पर कपड़ा उ्द्योग में (टेक्सटाइल) प्रयोग किया जा रहा है। यह उत्पाद 2008 में अनुबन्धन के लिए इ.पी.ए. में एप्रूवल के लिए पहली बार फाइल किया गया था। नैनोसिल्वर का उपयोग ज्यादा से ज्यादा कपड़ों के रखरखाव एवं चूहो के कुतरने से बचाव के लिए किया जाता है। ई.पी.ए. ने नैनोसिल्वर को नैनोपेस्टीसाइड मानते हुए फीफरा (FIFRA) का इसके विश्लेषण के लिए भेजा था क्योंकि कीटनाशकों को बाज़ार में आने से पहले अनुबन्धित होना अनिवार्य होता है। नैनोपेस्टीसाइड के अनुबन्धन के लिए कौन-कौन से विशेष डाटाजेनेरेशन की जरुरत पड़ेगी, इसके लिए फीफरा, ओ.ई.सी.डी. और आई.एस. ओ. संयुक्त रूप से विचार कर रही है। नैनोस्केल पदार्थों का मानव एवं प्रर्यावरण पर प्रभाव के लिए एक नई टेस्टिंग प्रोटोकॉल बनाने की कोशिश जारी है।

प्रसिद्ध ऐग्रोकेमिकल कम्पनियाँ जैसे-वी.ए.एस.फ. वायर क्राप साइन्सेस, मानसेन्टो एवं सन्जन्टा नेनोटेक्नालॉजी एण्ड रिसर्च, नैनो पारटिक्ल्स की मदद

से कीटनाशक बनाने में लगे हुए है। नैनो पेस्टीसाइड का प्रयोग कृषि के क्षेत्र में एक नयी आशा के रूप में लाभान्वित अवश्य करेगा। नैनोटेक्नालॉजी की विधि (नैनोइनकैप्सूलेशन) से बनाया गया नैनोपेस्टीसाइड का वातावरण एवं मानव स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसका गहन अवलोकन अवश्य होना चाहिए। हमें, हमेशा अपने दिमाग में किसी नयी टेक्नालॉजी इनोवेशन के लिए ''टेक्नालॉजी-हां पर सुरक्षा-अवश्य'' सिद्धांत को ध्यान में रखना चाहिए।

माइक्रोसेटेलाइट-पीसीआर विधि से चूहों के प्रजनन कॉलोनी की आनुवंशिक निगरानी

डॉ महादेव कुमार, वैज्ञानिक, जंतु-गृह

सी.एस.आई.आर. - भारतीय विषविज्ञान अनुसन्धान संस्थान, लखनऊ

आनुवंशिक निगरानी की पृष्ठभूमिका एवं महत्व :

प्रायोगिक चूहे (लेबोरेटरी माईस) मानव रोगों के सभी पहलुओं के अध्ययन के लिये व्यापक रूप से उपयोग किये जाने वाले मॉडल जीव हैं। पशु आनुवंशिक विशेषज्ञों के सतत प्रयास से चूहे (माईस) के बहुत सारे इनब्रेड स्ट्रेन (उपभेद) विकसित किये गये हैं, जैसे कि बाल्ब/सी, एकेआर, सी57/बीएल6, एनजेडबी, डीबीए/2 इत्यादि। इनमें से बहुत सारे स्ट्रेन मुख्यतः जैव चिकित्सा, शरीर विज्ञान, व्यवहार अध्ययन और औषधि अनुसन्धान के लिए उपयोग किये जाते हैं। इनब्रेड स्ट्रेन की उत्पत्ति एवं अनुरक्षण प्रायः भाई बहन प्रजनन (फुल सिब मैटिंग) योजना के द्वारा किया जाता है। इस प्रक्रिया के माध्यम से प्राप्त चूहे आनुवंशिक रूप से एकरूप/समरूप होते हैं। परन्तु यह एकरूपता कई कारणों से प्रभावित हो सकते हैं, जैसे कि प्रजनन त्रुटि, उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) और आनुवंशिक बहाव (जेनेटिक ड्रिफ्ट)। आनुवांशिक बहाव अवशिष्ट (रेसिडूअल) हेटेरोजाइगोसिटी के साथ आंशिक इनब्रीडिंग के कारण होता है। इनब्रेड स्ट्रेन्स (उपभेदों) के बीच आनुवंशिक संदूषण का मुख्य कारक प्रजनन त्रुटि (ब्रीडिंग एरर) है। आनुवंशिक रूप से दूषित चूहे के उपयोग से आर्थिक नुकसान के साथ साथ अनुसन्धान से जुड़े मूल्यवान समय और प्रायोगिक डाटा कि क्षति भी होती है। अतः चूहे के ब्रीडिंग कालोनी के प्रबंधन के लिए जेनेटिक मॉनिटरिंग एक आवश्यक घटक बन गया है। अच्छी कालोनी प्रबंधन के लिए यह आवश्यक है कि नियमित रूप से चूहे के प्रजनन कालोनी की आनुवंशिक निगरानी करके प्रत्येक स्ट्रेन का एक विशिष्ट (यूनिक) आनुवंशिक आनुवंशिक प्रोफाइल तैयार किया जाये। अतीत में यह निगरानी अक्सर प्रतिरक्षा विज्ञान, इमयूनोजेनेटिक मार्कर और जैव रासायनिक मार्कर का उपयोग करके किया जाता था। परन्तु इस तकनीक में उचित नमूने एकत्र करने के लिए चूहे को मारने की जरूरत पड़ती थी। साथ ही साथ इस मानक तकनीक की दो प्रमुख कमियां थीं 1) इन मार्करो का सीमित संख्या में होना, 2) निम्न स्तर के बहुरूपता (पोलिमोर्फिस्म) को दिखलाना। वर्तमान में, चूहे के इनब्रेड स्ट्रेन की जेनेटिक मोनिटरिंग के लिए मुख्यतः डीएनए आधारित तकनीक का उपयोग किया जाता है। यहाँ हम माइक्रोसेटेलाइट (सरल अनुक्रम लम्बाई बहुरूपता) मार्कर का उपयोग करके बाल्ब-सी चूहे के आनुवंशिक निगरानी का पता लगाते हैं। माइक्रोसेटेलाइट डीएनए की द्वि, त्रि, या चर्तु न्युक्लीओटाइड की आवृति को दोहराता है, जो की यूकैरियोटिक जिनोम में बहुतायत में मिलते है। इन दोहराते आवृति की संख्या चूहे की विभिन्न स्ट्रेन में भिन्न हो सकते है। चूहे के इनब्रेड स्ट्रेन की आनुवंशिक निगरानी में माइक्रोसेटेलाइट मार्कर एक नयी क्रांति लायी है, क्योंकि इसका परीक्षण अत्यंत सरल, सस्ता और अत्यधिक विश्वसनीय है। भारतीय विष विज्ञान अनुसन्धान संस्थान का पशु सुविधा विभाग बाल्ब-सी चूहे के आनुवंशिक निगरानी इस तकनीक द्वारा कर रहा है।

चूहे की पूंछ के ऊतक से डीएनए का निष्कर्षण :

सॅम्ब्रुक और रसेल के प्रोटोकॉल के अनुसार फिनाल-क्लोरोफोर्म विधि का उपयोग करके चूहे की पूंछ के ऊतक से जीनोमिक डीएनए का निष्कर्षण किया गया। संक्षिप्त में, 2 मिलीमीटर चूहे की पूंछ के ऊतक को पाचन बफर के साथ मिलाया गया। पुनः प्रोटीनेज को मिलाने के बाद 55 डिग्री सेंटीग्रेड पर 90 मिनटों के लिए गर्म किया गया। उसके बाद पचे हुए पूंछ के ऊतक से फिनॉल-क्लोरोफॉर्म विधि से डीएनए को निष्कर्षित किया गया। डीएनए की गुणवत्ता की जाँच के लिए 0.8 प्रतिशत एगरोज जेल पर इलेक्ट्रोफोरेसिस किया गया। डीएनए को -20 डिग्री सेंटीग्रेड पर संग्रहित किया गया ताकि बाद में उपयोग किया जा सके।

माइक्रोसेटेलाइट-पीसीआर :

आनुवंशिक निगरानी के लिए निम्नलिखित 12 आनुवंशिक मार्कर्सः डी1मिट17, डी1मिट36, डी1मिट121, डी1मिट136, डी1मिट171, डी2मिट75, डी3मिट54, डी3मिट200, डी4मिट199, डी5मिट18, डी17मिट28, और डी17मिट16 को उपयोग में लाया गया। इन माइक्रोसेटेलाइट प्राइमर्स का सीक्वेंस माउस जीनोम डेटाबेस के माध्यम से उपलब्ध किया गया (तालिका-1)। इन प्राइमर्स का चयन इनब्रेड चूहे के स्ट्रेन के बीच बहुरूपता (पोलिमोर्फिस्म) तथा पीसीआर उत्पादों के मॉलिक्यूलर साइज़ में अंतर के आधार पर चुना गया। पीसीआर संवर्धन 15 माइक्रोलिटर प्रतिक्रिया मिश्रण में किया गया, जिसमें 1 माइक्रोलिटर जीनोमिक डीएनए (50 नैनोग्राम), 1.5 माईक्रोलिटर, 10 पीसीआर बफर, 1.5 माइक्रोलिटर डीएनटीपी (2.5 मिली मोलर) 1 माइक्रोलिटर अग्रिम और 1 माइक्रोलिटर रिवर्स प्राइमर (10 पिकोमोल/माइक्रोलिटर) तथा 1 युनिट टैक पोलिमेरेज एंजाएम मिलाया गया। पीसीआर को निम्न तरीके से किया गया। शुरुआत के 5 मिनट 95 डिग्री सेंटीग्रेड पर, पुनः 94 डिग्री सेंटीग्रेड पर 30 सेकंड, 53 डिग्री सेंटीग्रेड पर 30 सेकेन्ड, 72 डिग्री सेंटीग्रेड पर 45 सेकेन्ड के क्रम को 40 चक्र तक तथा अंत में 72 डिग्री सेंटीग्रेड पर 10 मिनट का अंतिम विस्तार के लिया रखा गया।

पीसीआर उत्पादों का विद्युतकण कण संचलन (इलेक्ट्रोफोरेसिस) :

15 माइक्रोलिटर पीसीआर संवर्धित नमूने को 3 माइक्रोलिटर 6 लोडिंग डाई के साथ मिलाकर 3% एगरोज जेल (0.5 माइकोग्राम/लीटर एथिडियम ब्रोमाइड) पर 50 बेस पेयर डीएनए मार्कर के साथ लोड किया गया। 80 वोल्ट पर 3 घंटे के लिए जेल को चलाया गया । तत्पश्चात, एगरोल जेल का डिजिटल फोटोग्राफ जेल डाकुमेंटेशन सिस्टम से लिया गया।

एगरोज जेल एलेक्ट्रोफोरेसिस विधि से बाल्ब-सी चूहे के माइक्रोसेटेलाइट मार्कर्स के एलील साइज का मूल्याकंन किया गया (तालिका-1)।

तालिका-1 माइक्रोसेटेलाइट लोसायी, प्राईमर्स सेकुएंस, एन्नेलिंग तापमान और एल्लिल साइज

माइक्रो सेटेलाइट लोकस	प्राइमरी को सेकुएंस (अनुक्रम)	एन्नेलिंग तापमान (डिग्री सेन्टीग्रेड	बाल्ब / सी चूहे में एल्लिल साइज
डी1मिट17	प्राईमर 1 GTGTGCTGCCTTTGCACCTTT प्राईमर 2 CTGCTGTCTTTCCATCCACA	54	176 (176)
डी1मिट36	प्राईमर 1 GAGGAATGTAGAGTCCAACCTGG प्राईमर 2 TGAATAGATTAAGAGCCTGGAAGC	55	170 (170)
डी1मिट121	प्राईमर 1 TGTGGGTGCTGAGGAATACAA प्राईमर 2 GGACAGAACACCATAAGTTCTGC	55	250 (254)
डी1मिट136	प्राईमर 1 TAGCCCTACACACTGTAGAAATGC प्राईमर 2 TGAACACAAAGTAGTAAATGCGTG	55	110 (108)
डी1मिट171	प्राईमर 1 TGCAGATTCAGTCTGCCTTG प्राईमर 2 AGCCATGGGAACACTCTCAC	54	155 (148)
डी2मिट75	प्राईमर 1 TCAGCATGTGGATGAATACACA प्राईमर 2 AACTTTTTAAAAACTACGAGCGTG	55	106 (106)
डी3मिट54	प्राईमर 1 TCAGTTGACAGGGGACATTTACT प्राईमर 2 AACTTTTAAAACTACGAGCGTG	54	148 (147)
डी3मिट200	प्राईमर 1 CAACTTCAGTTTCTCATTTGAATTG प्राईमर 2 GCAAATGGAAGAGGTTTCTCC	55	136 (127)
डी4मिट199	प्राईमर 1 CTACCATGGTCTCATAAATTGCC प्राईमर 2 TTAGATGGCAAGAGTAAGACAAACA	54	200 (196)
डी5मिट18	प्राईमर 1 CTGTAGTGGGTGGTTTTAAAATTG प्राईमर 2 ATGCCACTGGTGCTCTCTG	54	220 (220)
डी17मिट28	प्राईमर 1 ACTCAGGACTCCAGAATGAAGATCC प्राईमर 2 ATTCCTAGATGAAAAGTCTGTGGC	55	108 (104)
डी17मिट16	प्राईमर 1 CCAGAAGACAGCATTCCACA प्राईमर 2 GTATGTCAGGGCTAGTTGACAGG	54	106 (106)

नोट : कोष्टक में दी गयी जानकारी माउस जीनोम डेटाबेस की है

बाल्ब-सी चूहे में माइक्रोसेटेलाइट-पीसीआर बैन्डिंग पैटर्न को चित्र 1 में दिखाया गया है। माइक्रोसेटेलाइट पीसीआर बैनडिंग पैटर्न सभी बाल्ब-सी चूहे के नमूने में एकरूपता को प्रदर्शित करतें हैं। सभी बाल्ब-सी चूहे के नमूने का अल्लेलिक प्रोफाइल माउस जीनोम डेटाबेस के लगभग समान है।

डीरमिट७५,	डी३मिट५४,	डी३मिट२००	डी१मिट१७१
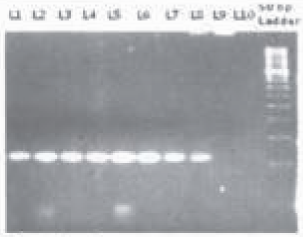 चित्र १ (क)	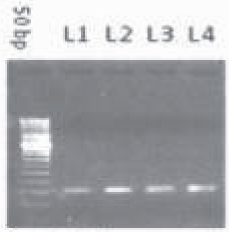 चित्र १ (ख)	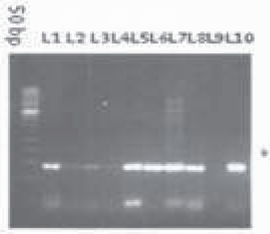 चित्र १ (ग)	चित्र १ (घ)
बाल्ब/सी चूहे के डीएनए के नमूने (लेन १- ८ तक) संबर्धित उत्पाद का साइज़: १०६ बेस पेयर	बाल्ब/सी चूहे के डीएनए के नमूने (लेन १- ४ तक) संबर्धित उत्पाद का साइज़: १४८ बेस पेयर	बाल्ब/सी चूहे के डीएनए के नमूने (लेन १- १० तक) संबर्धित उत्पाद का साइज़: १३६ बेस पेयर	बाल्ब/सी चूहे के डीएनए के नमूने (लेन १- ६ तक) संबर्धित उत्पाद का साइज़: १५५ बेस पेयर

हमारे द्वारा इस विधि में दिखाया गया कि कम से कम 8 बेस पेयर के आकार के अंतर को एगरोज जेल पर पहचान किया जा सकता है। अतः हम कह सकते है कि माइक्रोसेटेलाइट एक बहुत ही उपयोगी मार्कर है। इसके द्वारा चूहे के विभिन्न स्ट्रेन की आनुवंशिक निगरानी की जा सकती है। साथ ही साथ इन मार्कर्स का उपयोग कर विभिन्न इन्ब्रेड स्ट्रेन के बीच जेनेटिक सम्बन्ध का पता लगाया जा सकता है।

चूहे के प्रजनन कालोनी की आनुवंशिक निगरानी (जेनेटिक मोनिटरिंग) मुख्यतः उचित कालोनी प्रबंधन और गुणवत्ता प्रबंधन के द्वारा किया जाना चाहिए। अलग अलग कमरों में अलग अलग स्ट्रेन को रखकर, एक समय में एक पिंजरे (केज) को देखभाल कर तथा भागे हुए चूहे को मार देना चाहिए। ऐसे प्रबंधन करने से आनुवंशिक संदूषण से बचा जा सकता है।

बाजार में उपलब्ध फल; कितने सुरक्षित???

डा. डी.के. सक्सेना
चीफ़ साइंटिस्ट (सेवानिवृत्त), सी.एस.आई.आर.-भारतीय विषविज्ञान अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

''फलान्यापि परार्थाय वृक्षाः'' अर्थात् वृक्षों के फल दूसरों के लिए होते हैं। फलों में शरीर के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक जीवन सत्व (विटामिन्स) व खनिज द्रव्यों के साथ रोग निवारक औषधि-तत्व भी प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। फल उत्साहवर्धक, तृप्तिदायी, शीघ्र शक्ति प्रदान करने वाले, स्फूर्तिदायी, पाचन तंत्र को सबल बनाने वाले, रक्त वर्धक, बलदायी, स्वादिष्ट, सुपाच्य, दिमाग की कमजोरी व अवसाद (डिप्रेशन) को दूर करने वाले होते हैं। इसे सभी आयु-वर्ग के लोग खा सकते हैं। वर्ष भर उपलब्ध रहते हैं। गर्भवती महिलाओं तथा एक वर्ष से बड़े बच्चों के लिए फल बहुत गुणकारी हैं।

हरेक फल का अपना एक स्वाद होता है। एक ही फल के अलग-अलग स्वाद भी पाये जाते हैं जो वहाँ की जमीन, जलवायु पर निर्भर है। प्रत्येक फल में फ्रुक्टोज, अम्ल, विटामिन्स, प्रोटीन्स, सेलुलोज और माड़ की भिन्न-भिन्न मात्रा होती है, जिनके अनुपात से फल खट्टे या मीठे होते हैं। सन्तरें में फ्रुक्टोज और अम्ल की बराबर मात्रा होती है जिससे वह खट्टे-मीठे दोनों तरह के होते हैं।

गूदेदार फल प्रारम्भ में स्टार्च, अम्ल, रेशों के कारण स्वादहीन होते हैं ताकि उनके पकने तक कीड़े-मकौड़े, पक्षी एवं जानवर, आदि खा न पायें। परन्तु पकने पर फल रंगीन, मीठे, मुलायम एवं आकर्षक हो जाते हैं, जिससे पक्षी, मनुष्य, जन्तु आदि आकर्षित होकर इन्हें खाये ताकि इनके बीजों का वितरण सहजता एवं सुगमता से हो सके।

भारत विश्व में दूसरा सबसे बड़ा फल-उत्पादक देश हैं जिसमें केला, आम का उत्पादन सबसे ज्यादा है। वहीं अनानास, नीबू, सेब में इसका चौथा, छठा एवं नौंवा स्थान क्रमानुसार है। परन्तु दुःख का विषय है कि इतना उत्पादन होने के बाद भी कुल पैदावार का लगभग 30 से 40 प्रतिशत फल ठीक से रख-रखाव, उचित तकनीकी जानकारी का अभाव, गलत अव्यवहारिक, अमान्य फल पकाने की विधियाँ, उत्पादन स्थल से दुकानों तक पहुंचाने की गलत वाहन-विधियाँ आदि के कारण नष्ट हो जाते हैं या खाने योग्य नहीं रह पाते। इस कारण न केवल गरीब किसानों को उनकी मेहनत का पूरा पैसा नहीं मिल पाता है, अपितु विदेशी बाजार में भी हम फल नहीं पहुंचा पाते हैं।

भारत वर्ष में दो श्रेणी के फलों का उत्पाद होता है।

1. क्लैमाकटरिक फल : यह फल पेड़ों से तोड़ने के बाद भी पकाये जा सकते हैं। उदाहरणतः सेब, खूबानी, केला, अंजीर, अमरूद, आम, आड़ू, नाशपाती, जामुन, टमाटर आदि।

2. गैर-क्लैमाकटरिक फल : जो केवल पेड़ पर लगे ही पकते हैं, तोड़ लेने पर कच्चे फल अलग से नहीं पकाये जा सकते हैं। उदाहरणतः चेरीज, अंगूर, नीबू, सन्तरा, अनानास आदि।

फलों के पकने की प्राकृतिक प्रक्रिया : जब पेड़ों पर कच्चे फल अपनी वृद्धि के अन्तिम पड़ाव पर आ जाते हैं तब उन स्थानों से, जहाँ पर ऊतक तेजी से वृद्धि कर रहे होते है जैसे जड़ों के सिरे, पुष्प, क्षतिग्रत ऊतकों से

ईथलीन गैस निष्कासित होने लगती है। यह गैस अंतरागों एवं बाह्य वातावरण में पौधे के चारों ओर एक पतला सा चैम्बर जैसा बना लेती है। इस ईथिलीन गैस से फलों की वह जीन्स सक्रिय हो जाती है जो फलों को पकाने के लिए उत्तरदायी होती है। इन जीन्स की सक्रियता के कारण, कई एन्जाइम्स अपने प्रभावी रूप में आ जाते हैं तथा फल के पकने की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। यही ईथिलीन गैस फलों की डंडी और शाखा के जोड़ वाले स्थान को भी आगे चलकर कमजोर कर देती है जिससे पके फल अपने भार के कारण स्वतः पेड़ से गिर जाते हैं।

फलों के पकते समय मीठे फलों की अम्लीयता समाप्त हो जाती है। फल उदासीन (न्यूट्रल) हो जाते हैं। स्टार्च का शर्करा में परिवर्तन हो जाता है। सख्त पेक्टिन में रसायन प्रक्रिया होकर इसकी मात्रा कम जाती है जिससे फलों का गूदा मुलायम हो जाता है। कार्बनिक अणु परिवर्तित होकर एरोमेटिक कार्बनिक अणुओं में परिवर्तित हो जाते हैं जिससे फल पककर सुगन्ध देने लगते हैं। फलों के छिलके (हरे) भी क्लोरोफिल के विघटन के कारण पीले या गुलाबी हो जाते हैं जो एन्थोसाइनिन रंगा कणों के प्रभावी होने पर अपना रंग निखार कर फले पकों को आकर्षक रंगों का बना देते हैं।

नींबू, संतरा, मौसम्मी, कीनू के छिलके पकने के बाद भी हरे रहते हैं। प्रायः इन फलों को आपने पीला या नारंगी रंग का भी बाजार में देखा होगा। वास्तव में इनके छिलके के हरे रंग को उतारने के लिए ईथिलीन गैस का प्रयोग करते हैं जिससे हरा रंग वाला क्लोरोफिल बिखंडित हो जाता है और उसकी जगह पीला या नारंगी रंग उपस्थित कैरोटिनाइड्स की वजह से हो जाता है।

फलों को पकाने की आवश्यकता क्यों होती है ?

फल जब पेड़ पर ही पकने लगता है तो उसमें कोई रसायनिक प्रक्रिया पर नियंत्रण नहीं रहता। जब मौसमी फल पेड़ पर लगे लगे एक साथ पकने लगते हैं तो उन्हें दूर-दराज में भेजने पर उनके दबने, खराब होने का, सड़ने का डर रहता है। पेड़ पर पकने पर उनका पिलपिलापन ज्यादा हो जाता है जिससे बैक्टीरिया, फंफूदी आदि का संक्रमण हो जाता है। एक साथ फल पकने पर मौसमी फल कम अंतराल पर गिर कर ढेर लगा देते हैं जिससे बाजार भाव गिर जाता है और किसानों, व्यापारियों को घाटा हो जाता है। इसलिए किसान और व्यापारी कच्चे फलों को तोड़कर अपनी आवश्यकतानुसार पका कर बाजार में उतारते हैं तथा उनका दूर-दराज इलाकों में भेजने का मार्ग सुगम हो जाता है।

फल पकाने का इतिहास : वर्ष 1800 के लगभग यह देखा गया कि सड़कों के किनारे लगे लैम्प (जो उस समय मिट्‌टी के तेल से जलते थे) के पास के पौधों में विशेषतः शाखायें मोटी हो जाती थी तथा कुछ के घुमावदार हो जाती थी। जिससे यह अनुमान लगाया गया कि लैम्प से कोई ऐसी गैस निकलती है जो शाखाओं में कोशा विभाजन तेजकर देती हैं। बाद में यह पाया गया कि अगर कच्चे फलों के साथ टूटा हुआ केला या सेब बंदकर रख दिया जाए तो फल जल्दी पक जाते हैं। वर्ष 1901 में पहली बार यह पता लगा कि पेड़ों से निकलने वाली एक गैस फलों को पकाने के लिए उत्तरदायी है जिसे इथीलीन के रूप में जाना गया।

वर्ष 1993 में फलों को पकाने की उत्तरदायी जीन ETR 1 तथा CTR1 की खोज की गई। यही जीन क्रियाशील होकर जैव-रसायनिक प्रक्रिया प्रारम्भ होते ही निष्क्रिय हो जाती है। बाद में यह पाया गया कि ईथिलीन गैस वृक्षों से, कटे भागों से या टूटे हुए अलग फलों से अल्प मात्रा में निकलती रहती है तथा फलों को पकाने के दायित्व का निर्वाह करती है।

इसी तथ्य का प्रयोग आज भी गांव में, घरों में किया जाता है। कच्चे फलों विशेषतः आम को भूसी में, गेहूँ के बीच दबा दिया जाता है। टूटे भाग से ईथिलीन गैस निकल कर फलों को पका देती है क्योंकि यह गैस भूसे, बारे या गेहूँ या पतवार से आसानी से बाहर निकल नहीं पाती है।

एक अन्य विधि में फलों को परत-दर-परत प्लास्टिक के कंटेनर्स या पटरों पर रखकर एक कोने में मिट्टी के तेल से जलने वाली लालटेन या अंगीठी जला दी जाती है। कमरा ठीक से बंद कर दिया जाता है। मिट्टी के तेल के जलने से एसिटीलीन गैस बनती है जो बंद कमरे में वही घूमती रहती है और ईथिलीन गैस के अनुरूप होने के कारण फलों को पका देती है।

पके हुए फलों को कच्चे फलों के साथ अखबार में लपेटकर या फ्रिज में बंदकर रखने पर भी ईथिलीन गैस पके फल से निकल कर बाकी साथ में रखे कच्चे फलों को पका देती है।

परन्तु इन उपरोक्त विधियों से सीमित मात्रा में ही फलों को पकाया जा सकता है। भारत में त्योहारों में या फलों के प्रति जागरुकता के कारण बढ़ती हुई मांग को इन विधियों से पूरा नहीं किया जा सकता है।

अतः दूर-दराज के इलाकों से फलों को कच्चा ही तोड़कर, व्यापारिक जगहों पर ले जाकर ही इन्हें पकाया जाना ज्यादा हितकर होता है जिसमें अनेक विधियां प्रयोग में लाई जाती हैं।

फलों के पकाने की कृत्रिम, व्यापारिक विधियाँ :

सामान्यतः फलों को पकाने हेतु, कैल्शियम कार्बाइड, एसिटीलीन, ईथिलीन, ईथ्रिल (2-क्लोरो इथाइल फास्फोरिक अम्ल), ईथेनाल का प्रयोग भारत एवं अन्य विकासशील देशों में किया जाता है। विकसित देशों में ईथिलीन गैस का प्रयोग ही किया जाता है।

कैल्शियम कार्बाइड : व्यावसायिक रूप में कैल्शियम कार्बाइड का उत्पादन चूने तथा कोक के मिश्रण को 2000^{0} से. ताप पर विद्युत आर्क भट्टी में गर्म कर किया जाता है।

$$CaO + 3C \rightarrow CaC_2 + CO$$

सामान्यतः ये 'मसाला' के नाम से मिलता है। इसका व्यापक उपयोग बेल्डिंग में एसीटिलीन गैस के उत्पादन के लिये तथा प्लास्टिक बनाने में होता है। कार्बाइड सस्ते में व आसानी से मिल जाता है। इसकी कम मात्रा भी फलों को पकाने के लिये प्रभावकारी होती है। एक किलो कार्बाइड से 15 क्रेट फलों को पकाया जा सकता है। इसका एक फायदा यह भी है कि इससे फल समान रूप से पकते हैं, एक सा पका हुआ दिखता है और ज्यादा टिकाऊ होता है। इससे भारत एवं अन्य विकासशील देशों में आम, अंगूर, केला, तरबूज, अनार एवं अमरूद को पकाया जाता है।

कार्बाइड से फलों को पकाने के लिए कच्चे फलों को सूखे कागज में लपेट कर या थैलों में भरकर बंद

कमरे में सामान्य ताप पर रख दिया जाता है। साथ में पुड़िया में कार्बाइड रख दिया जाता है। कार्बाइड फलों की नमी के संपर्क में आते ही एसीटिलीन गैस बनाने लगती है यह प्रक्रिया ऊर्जा उत्पादन भी करती है। ऊंचे ताप पर एसीटिलीन गैस फलों को पकाने की रसायनिक प्रक्रिया प्रारम्भ कर देती है। कभी-कभी कार्बाइड को कच्चे फलों पर लगा देने से भी नमी पाकर उनका पकना प्रारम्भ कर दिया जाता है। बाजार में त्यौहारों, विवाह आदि के मौसम में बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए कार्बाइड की ज्यादा मात्रा प्रयोग में लाई जाती है जिससे कई बार पके फल उतने मीठे नहीं होते, खट्टे रह जाते हैं, कड़े होते हैं एवं ज्यादा रेशेदार होते हैं जिन्हें खरीदने पर ग्राहक को बाद में पछताना पड़ता हैं।

व्यापारिक तौर पर मिलने वाले कैल्शियम कार्बाइड में कभी-कभी आर्सेनिक और फास्फोरस भी मौजूद रहता है जो मानव स्वास्थ्य के लिए घातक, कैंसर जनक हो सकते हैं। अतः कैल्शियम कार्बाइड से पके फलों को खाने से पाचन तंत्र एवं यकृत प्रभावित हो सकते हैं। सर-दर्द, चक्कर आना, मनो-भ्रान्ति, नींद का ज्यादा आना, प्रमस्तिष्क में सूजन, पेट में जलन तथा मुंह में घाव हो सकते हैं।

चूंकि कार्बाइड से पकाये फल मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो सकते हैं, अतः भारत में प्रिवेंशन आफ फूड एडल्ट्रेशन एक्ट, 1955 में रूल 44-AA के अंतर्गत कार्बाइड गैस का फलों को पकाने के प्रयोग को प्रतिबंधित कर दिया है। जिसके अंतर्गत कोई व्यक्ति न तो कार्बाइड को फलों को पकाने के लिए बेचेगा, न देगा, न प्रयोग करेगा या उन फलों को अपने यहाँ बेचेगा जो कार्बाइड से पकाये जाते हों''। परन्तु वास्तविकता यह है कि इस चेतावनी का अनुपालन ठीक से नहीं हो पा रहा है। काबाईड सस्ता, आसानी से उपलब्ध, प्रयोग की झंझट-रहित विधि के कारण इसका सर्वत्र, सबसे ज्यादा प्रयोग होता है। 25 से 30 रु./कि. कार्बाइड से करीब 200 किलो आम आसानी से पकाया जा सकता है।

एसीटिलीन गैस : इस गैस का सीधा प्रयोग कार्बाइड को छोड़कर अन्य स्रोतों से पैदाकर, फलों को पकाने में किया जाता है। कच्चे फलों को तोड़कर छेद-दार क्रेट्स में रख दिया जाता है और नीचे लकड़ी जला दी जाती है। कमरे को पूरी तरह से बंद कर देते हैं। धुएं में मौजूद एसीटिलीन गैस फलों को पका देती है। इस विधि से केले, आम पकाये जाते हैं। परन्तु इस विधि से पके फल पूरे पीले नहीं पड़ पाते, उनका स्वाद भी खराब हो जाता है।

कार्यस्थल पर एसीटिलीन गैस की निकासी की वजह से काम करने वाले खड़े नहीं रह सकते है क्योंकि यह दम-घुटाऊ गैस है। इससे सर-दर्द, सुस्ती, दिमाग की अस्थिरता तथा झटके जैसे लक्षण हो सकते हैं।

एसीटिलीन गैस का प्रयोग इसलिए भी नहीं करते हैं क्योंकि एक तो ये प्राकृतिक तौर पर फल पकाने हेतु उत्तरदायी नहीं है। दूसरे, इसकी प्रभावनशीलता कम होती है।

ईथ्रिल (एथीफोन) : इस रसायन का नाम 2-क्लोरोईथाइल फास्फोनिक अम्ल है, जो कीटनाशक (आर्गेनोफास्फेट) की श्रेणी में रखा गया है। यह रसायन, ईथलीन गैस बनाती है जो फलों को पकाने की प्रक्रिया प्रारम्भ करती है।

इस विधि में कच्चे फलों को 0.1 प्रतिशत ईथ्रिल के घोल में डुबा कर, पोछ कर, सुखा लिया जाता है। तत्पश्चात् फलों को अखबार पर अलग-अलग रखकर किसी सूती कपड़े से ढक दिया जाता है। दो हफ्ते के अंदर फल पककर तैयार हो जाते हैं।

एक अन्य विधि में 10मिली ईथ्रिल और 2 ग्रा. सोडियम हाइड्राक्साइड को मिलाकर 2 लीटर पानी में घोल दिया जाता है। इस घोल को बर्तनों में लेकर फलों को पकाने वाले कक्ष में रख दिया जाता है। कक्ष पूरी तरह से बंद कर दिये जाते है। कक्ष में दो-तिहाई फल भर दिये जाते हैं बाकि एक चौथाई जगह वायु-भ्रमण के लिये छोड़ दी जाती है। इस विधि से 12 से 24 घंटे के अंदर फल पक जाते हैं। ईथ्रिल की लागत को कम करने के लिये कभी-कभी कच्चे फलों के साथ पके पपीते और केले भी रख दिये जाते हैं जिससे निकलने वाली ईथिलीन गैस फलों को जल्दी पकाने में सहायक होती है। इस रसायन से पके फल स्वादिष्ट नहीं होते तथा कीटनाशक की श्रेणी में होने के कारण भारत में FDCA (फूड एण्ड ड्रग कन्ट्रोल एडमिनिस्ट्रेशन) के अंतर्गत इसका प्रयोग फलों को पकाने में प्रतिबंधित हैं।

ईथिलीन : यह गैस अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर 10-100 पी.पी.एम. सान्द्रता पर फलों को पकाने में व्यापक रूप से प्रयोग में लाई जाती है। अमरीका में इसे उपरोक्त सान्द्रता पर FDCA (जनरली रिगार्डड एज़ सेफ) श्रेणी में रखा गया है। ईथिलीन गैस का नियंत्रित सान्ध्रता, दशाओं एवं अनुपाती नमी में फलों को पकाने के लिए पूरी विश्व में सबसे सुरक्षित विधि मानी गई है। ईथिलीन को इस कार्य हेतु मूल रूप से दो प्रकार से प्राप्त किया जाता है।

1. ट्रिकिल विधि (थोड़ा-थोड़ा करके पहुँचाना)
2. ईथिलीन जनरेटर द्वारा प्राप्त करना।

ट्रिकिल विधि में सीधे गैस को बंद वातानुकूलित चैम्बर्स में 10 माईक्रोग्राम प्रति लीटर पर 24 घंटे के लिए छोड़ा जाता है। जिससे चैम्बर्स में 10-100 पी.पी.एम. की सान्द्रता बनी रहे। चूंकि ईथिलीन गैस की अधिक सान्द्रता विस्फोटक हो सकती है अतः इसको वायु या नाइट्रोजन के साथ मिश्रण कर चैम्बर्स में धीरे-धीरे छोड़ा जाता है। चैम्बर्स में क्रेट्स में कच्चे फल रख दिये जाते हैं और वहाँ का ताप आवश्यकता के अनुरूप 10^0 से 25^0 C तथा नमी 90-95 प्रतिशत रखी जाती है। गैस के समान सांध्रता के फैलाव के लिए पंखे भी लगाये जाते हैं। पकने की जैव-रसायनिक प्रक्रिया से जो CO_2 बनती है, उसको सेंसर्स के माध्यम से 1 प्रतिशत से ज्यादा होते ही बाहर निकालने का भी प्रावधान होता है। CO_2 की बढ़ी मात्रा फलों को पकाने की प्रक्रिया धीमी कर सकती है। अतः इसकी निकासी बहुत आवश्यक होती है। फल आवश्यकता अनुसार 3 से 5 दिन में पके हुए प्राप्त किये जाते हैं।

ईथिलीन जनरेटर द्वारा : उपरोक्त विधि से फलों को पकाने हेतु ईथनाल का एल्यूमिना (Al_2O_3) की उत्प्रेरक के रूप में उपस्थिति पर 300^0 से. ताप पर बिखण्डन किया जाता है। यही ईथिलीन फलों को पकाने में काम में लाई जाती है।

$$C_2H_5OH \xrightarrow[300^0\text{ से}]{Al_2O_3} C_2H_4 + H_2O$$

बाहर से दी गई ईथिलीन, फलों के पकाने की प्रक्रिया को जल्दी शुरू कर देती है क्योंकि प्रकृति में भी फलों को पकाने के लिए ईथिलीन ही उत्तरदायी है और

इस तथ्य का ज्ञान बहुत प्राचीन है एवं अनेक विधियों से इसी गैस से सुरक्षित तरीके से फलों को पकाने की घरेलू विधियाँ अपनाई जाती रही हैं।

अतः उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखकर चाहिए। यद्यपि ईथिलीन से पके फल अंतर्राष्ट्रीय मानकों के अनुपालन के पश्चात् हानि रहित है परन्तु भारत में अभी यह विधि व्यापक नहीं है, प्रयास हो रहे हैं, निकट भविष्य में स्वास्थ्य के लिए सुरक्षित ईथिलीन से पके फल मिलने की प्रबल संभावना है।

परन्तु वर्तमान में व्यावहारिक रूप से कानून की मनाही के बाद भी कार्बाइड या कीटनाशी रसायन से पके फल बहुलता से, धन अर्जन करने की मानसिकता के कारण उपलब्ध हो रहे हैं। अतः इस दिशा में या तो प्रचलित घरेलु तरीके से पके फल खायें या मौसम में या वर्ष भर रहने वाले फलों को प्राकृतिक रूप से पेड़ से उपलब्ध होने वाले ही खायें। अन्यथा निम्न सावधानियां फलों को क्रय करते समय बरतें, जिससे काबाईड से पके फलों को खाने रोका जा सके :-

सावधानियाँ :-

1. आम जैसे मौसमी फलों को फसल आने पर ही खायें। फसल से पहले बिकने वाले आम कार्बाइड से पके होते हैं।
2. कार्बाइड से पके आम की महक प्राकृतिक नहीं होती, फल सूखे तथा कम रसीले होते हैं।
3. आम का छिल्का पीला हो सकता है, परन्तु फल गूदेदार, पूरा पका नहीं होगा।
4. कार्बाइड से पके फल जल्दी गल जाते हैं, छिलके में जगह-जगह काले चकक्ते या धब्बे पड़ जाते हैं।
5. कार्बाइड से पके केले पूरे पीले रंग के होते हैं; जबकि प्राकृतिक केले का छिलका हरे और पीले दोनों रंगों को होता है। केले पीले, परन्तु डंठल हरा होता है।
6. कार्बाइड से पके तरबूज में जगह-जगह काले धब्बे हो सकते हैं। प्राकृतिक पके तरबूज में एक तरफ का रंग पूरी तरह से अलग सा होता है क्योंकि बह पकते समय तरबूज में एक तरफ का रंग पूरी तरह से अलग सा होता है क्योंकि वह पकते समय सूरज की रोशनी से बचा रहता है।
7. पपीता कार्बाइड से पकाने पर पूरी तरह से पीला हो जाता है। अतः हरे-पीले पपीते खरीदें।

पके फल विश्वसनीय दुकानदारों, शापिंग काम्प्लेक्स, माल से ही खरीदने की प्राथमिकता दें।

आमों को पानी से खूब धो लें, उन्हें थोड़े नमक / नीबू के पानी में कुछ घंटे रखें तब खायें।

सम्भव हो तो फलों को छीलकर ही खायें जिससे उसमें लगा 'मसाला' निकल जाये।

फलों को उनके मौसम में ही खरीदें, उससे पहले बिकने वाले फल कार्बाइड से पके हो सकते हैं।

इस दिशा में परिवार एवं समाज में जागरूकता लायें।

ईथिलीन से पके फल जो अंतर्राष्ट्रीय मानको के अनुरूप पके हों, उनको प्राथमिकता दें।

सभी फलों को शक की दृष्टि से न देखें। भारत में गर्मी, धूप व सूर्य की रोशनी से भी कच्चे फल, टमाटर, नींबू आदि स्वतः ही हरे से गुलाबी, कर पीले पड़ जाते हैं, केले पीले होकर गलने लगते हैं।

''सोंच समझकर खरीदें फल, बरतें सतर्कता। कार्बाइड से पके फल, दे सकते विषाक्तता।।''

दैनिक जीवन में व्यक्तिगत देखभाल के प्रसाधन एवं उनके हानिकारक प्रभाव

डा. देवेन्द्र कुमार पटेल, स्मिता पांचाल एवं रूपिन्दर कुमारी

एनालिटिकल केमेस्ट्री सेक्शन, सी.एस.आई.आर.-भारतीय विषविज्ञान अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

सम्पूर्ण विश्व में व्यक्तिगत देखभाल के प्रसाधन का उपयोग आम बात है। राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इसका बहुत बड़ा बाजार है। बाजार में अनेक प्रकार की प्रसाधन सामग्री जैसे-साबुन, शैम्पू, डियोडरेन्ट एवं सौन्दर्य हेतु उपयोग में आने वाली सामग्री तथा अन्य उत्पाद मौजूद है। इन उत्पादों में अनेक प्रकार के विषैले रसायन होते है। जिनकी तरफ, उपयोग करते समय, हमारा ध्यान नहीं जाता है। परन्तु इनमें उपस्थित रसायन हमारी त्वचा के माध्यम से अवशोषित होकर या सूँघने द्वारा हमारे शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। कई वर्षों तक इन उत्पादों के प्रयोग से विषैले पदार्थों की मात्रा शरीर में प्रवेश करती जाती या बढ़ती जाती है। कई वर्षों तक इन उत्पादों के प्रयोग से विशैले पदार्थों की मात्रा शरीर में बढ़ती जाती है। जिनका कालान्तर में प्रभाव बहुत ही घातक होता है।

प्रसाधन कम्पनियों के लिए विश्लेष्णात्मक परीक्षण हेतु कोई कानूनी अनिवार्यता निर्धारित नहीं की गयी है। न ही ऐसी कोई वाध्यता है कि वे अपने उत्पादों को बाजार में लाने से पूर्व उनके घटकों को प्रदर्शित करें।

यह सर्वविदित है कि सौन्दर्य प्रसाधनों में विषैले रसायन होते है तथा जिनका प्रयोग बहुत ही खतरनाक है। व्यक्तिगत प्रसाधनों में प्रयोग किए जाने वाले प्राकृतिक पदार्थ, जो पहले से ही विषैले पदार्थों से दूषित होते हैं, की भी परीक्षण की कोई कठोर कानूनी व्यवस्था नहीं है।

अभी तक सर्वसाधारण की स्वास्थ्य सुरक्षा हेतु संयुक्त राष्ट्र रसायन पॉलिसी संस्था के पास भी कोई नीति नही है। U.S. Chemical Society चिल्ड्रेन एन्वायर्नमेन्ट हेल्थ सेन्टर, माउन्ट सिनाइ मेडिकल सेन्टर, न्यूयार्क के शोध कर्त्ताओं ने ऐसे युवाओं पर अध्ययन किया जो कि इन उत्पादों का प्रयोग कर रहे थे, और पाया कि उनकी बॉडी मॉस इन्डेक्स और कमर परिधि (Waist circumference) सामान्य से बढ़ा हुआ है। अर्थात ऐसे बच्चों में मोटापा अधिक पाया गया।

वास्तव में प्रसाधन सामग्रियों में मौजूद विषैले पदार्थों से समाज के हर वर्ग के लोग यहाँ तक कि बच्चे, युवा, खास कर की महिलायें एवं बुजुर्ग सभी प्रभावित हैं। उन उत्पादों में मौजूद विषैले रसायनों की सूची निम्न लिखित है -

1. थैलेट (डाई ईथाइल थैलेट एवं ट्र्यूटाइल बन्जाइल थैलेट)

दैनिक उपयोग में आने वाली प्रसाधन सामग्री

2. ट्राइक्लोसेन
3. फार्मेल्डिहाइड
4. लेड एसिटेट
5. ब्यूटाइलेटेड हाइड्रोटालुइन
6. सोडियम ताऊरिल / लाऊरस सल्फेट
7. पैराबेन

(1) थैलेटः- थैलेट्स एक मानव निर्मित रसायन है जो कि मानव शरीर में मौजूद अंतः स्त्रावी ग्रंथियों को हानि पहुँचाता है। जिससे शरीर के प्राकृतिक हॉरमोन में बदलाव आता है। उनका प्रयोग साधारणतः प्लास्टिक फ्लोटिन्ग और पेन्ट, चिकित्सीय उपकरणों एवं व्यक्तिगत देखभाल के प्रसाधनों में किया जाता है। अब तक यह समझा जाता रहा है कि मोटापे का कारण पोषक तत्वों की कमी एवं शारीरिक श्रम की कमी है। परन्तु एक वैज्ञानिक शोध में चौकाने वाले तथ्य सामने आयें हैं, जिसमे यह बताया गया है कि मोटापे की एक बड़ी वजह थैलेट्स है। मॉउन्ट सिनाय मेडिकल सेन्टर, न्यूयार्क के एक अध्ययन में यह पाया गया कि बच्चों की बॉडी मास इन्डेक्स के बढ़ने में इस विषैले पदार्थ का योगदान था। इस अध्ययन के लिए 387 बच्चों के मूत्र का विश्लेषण थैलेट की सान्द्रता जानने के लिए किया गया और यह पाया गया कि 97 प्रतिशत बच्चों के मूत्र में थैलेट मौजूद था। ये वे बच्चे थे जो प्रतिदिन इत्र (Perfume), खूशबू दार लोशन, सौन्दर्य प्रसाधन का प्रयोग करते थे। इसके अलावा उन बच्चों, जिन्हौंने थैलेट युक्त पोषक तत्वों का प्रयोग किया था तथा जिनके चिकित्सीय परीक्षण में थैलेट युक्त उपकरणों का प्रयोग हुआ था, के मूत्र में भी थैलेट की मात्रा पायी गयी।

मोटे बच्चों खासकर लड़कियों में मोनो इथाइलेटेड थैलैट की 10 प्रतिशत सान्द्रता पायी गयी।

स्त्रोतः http://www.mountsinai.org/.

एक अन्य शोध में वाशिंगटन के वैज्ञानिकों ने थैलेट के प्रभाव को जानने एवं उसमें सम्बन्ध बताने के लिए स्वाँस से निकलने वाली हवा में नाइट्रिक आक्साइड की मात्रा ज्ञात करके यह बताया कि जिन बच्चों में (उम्र 5-9 वर्ष) थैलेट (डाई ईथाइल एवं ल्यूटाइल बैन्जाइल थैलेट) की मात्रा अधिक थी। उनके द्वारा छोडी गयी स्वाँस में भी नाइट्रिक आक्साइड की मात्रा भी अधिक पायी गयी। जिसके कारण उनमें अस्थमा से सम्बन्धित सूजन पायी गयी। इस प्रकार से, छोडी गयी स्वाँस में नैट्रिक ऑक्साइड का पाया जाना, एक जैव सूचक है कि वह व्यक्ति थैलेट से ग्रसित है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि बचपन में दमा का रोग होने में थैलेट का बहुत योगदान है।

थैलेट मुख्यतः शरीर में, भोजन के द्वारा, स्वाँस के द्वारा तथा त्वचा के द्वारा अवशोषित होने के कारण, प्रवेश कर जाता है।

(2) ट्राइक्लोसेनः- यह एक एन्टीबैक्टीरियल रसायन है। जिसका उपयोग वृहद स्तर पर साबुन, डियोडरेन्ट, सौन्दर्य प्रसाधन, क्लीजिंग लोशन, टूथपेस्ट, प्लास्टिक एवं कपड़ों आदि में किया जाता है। ट्राइक्लोसेन से सम्पर्क में आने पर निम्न बिमारियां होने का खतरा रहता है, जैसे - त्वचा सम्बन्धी बिमारी एवं एक्जिमा, लेकिन यदि कोई व्यक्ति कई सालों तक इसके सम्पर्क में रहता है तब उसे थाईराइड ग्रन्थि की बिमारी, एलर्जी एवं अस्थमा जैसी बिमारी होने का खतरा बढ़ जाता है।

(3) फार्मेल्डिहाइडः- यह रसायन मुख्यतः उत्पादों को संरक्षित करने के लिए उपयोग में लाया जाता है। इसके डालने से वह उत्पाद कई वर्षों तक संरक्षित रखा जा सकता है। इसका उपयोग भी व्यक्तिगत देखभाल

के उत्पादों में किया जाता है। यह एक तरह का कैन्सर जनित रसायन है जिसके अधिक प्रयोग से अथवा लगातार सम्पर्क में रहने से कैन्सर जैसी भयंकर बिमारी होने का खतरा बना रहता है। इसके अतिरिक्त आखों में आँसू आना एवं नाक में जलन जैसी बिमारी भी होती है।

प्रायः नाखून उपचार (nail treatment), बालों के रंगने के उत्पाद, बालों को विरन्जन करने के उत्पाद, इत्यादि में बहुतायत से प्रयोग किया जाता है।

(4)लेड एसिटेटः- यह सर्वविदित है कि लेड (सीसा) बहुत खतरनाक तत्व है तथा इसके द्वारा बनाये गये मिश्रित उत्पाद तो और भी खतरनाक हो सकते है जैसे - लेड एसिटेट का प्रयोग बालों को रंगने वाले रंजकों में किया जाता है। लेड एसिटेट की विषाक्तता का ज्ञान इस प्रकार किया जा सकता है कि यह प्रजनन क्षमता में कमी, स्वसन सम्बन्धि बिमारियाँ, दिमागी बिमारियाँ एवं कैन्सर जनित्र हानिकारक रसायन है। लेड एसिटेट की अर्ध आयु अधिक होने के कारण यह पर्यावरण में कई वर्षों तक जों के त्यों बने रहते है। और इसमें जीवों/मनुष्यों के शरीर में एकत्रित होने की क्षमता भी होती है।

(5) ब्यूटाइलेटेड हाइड्रोटालुइन (BHT) :- इस रसायन का उपयोग मुख्यतः सुगन्ध वाले उत्पादों में किया जाता है। इसके छिडकाव से बदबू पैदा करने वाली गन्ध को दूर किया जा सकता है। जैसे - डीयोडरेन्ट, परफ्यूम, पाउडर आदि जो कि व्यक्तिगत प्रयोग के प्रसाधन हैं। यह रसायन भी पर्यावरण में अनेक वर्षों तक ज्यों के त्यों बने रह सकते हैं और जीवों के शरीर में रहने में सक्षम हैं। इसके दुष्परिणाम निम्न है- कैन्सर उत्पन्न करना, अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियों को सुचारू रूप से काम न करने देना।

(6) सोडियम लाऊरिल/(लाऊरथ सल्फेट) :- यह एक प्रकार का झाग उत्पन्न करने वाला रसायन है जिसका प्रयोग मुख्यतः दाढ़ी बनाने वाली क्रीम एवं फोम में किया जाता है। यह भी एक प्रकार का कैन्सर उत्पन्न करने वाला रसायन है जोकि पर्यावरण एवं जीवों के शरीर में अनेक सालों तक रह सकने में सक्षम है।

(7) पैराबेन (Paraben) :- यह मुख्यतः पदार्थों को संरक्षित रखने के लिए प्रयोग में लाया जाता है। इस रसायन का प्रमुख गुण है कि यह बैक्टीरिया एवं कवक (Fungus) को उगने नहीं देता है। जिससे व्यक्तिगत देख-भाल के उत्पाद सालों साल खराब नहीं होते हैं। मिथाइल पैराबेन, माइश्चराइजर, चेहरे के विभिन्न प्रकार की क्रीम, बॉडी लोशन आदि में प्रयोग किया जाता है। इसके दुष्परिणाम से त्वचा में खुजली, जलन एवं अन्य प्रकार की एलर्जी हो जाती है। इसके अतिरिक्त भी अनेक प्रकार के विषैले रसायन व्यक्तिगत देखभाल के उत्पादों में हो सकते हैं।

(I) किसी भी व्यक्तिगत देख-भाल के उत्पादों का प्रयोग करने से पूर्व यह सुनिश्चित करलें कि उसके डिब्बे पर निम्न चीजें लिखी हैं या नहीं - जैसे कि -

(1) थैलेट फ्री

(2) पैराबेन फ्री

(II) ऐसे उत्पाद जिनकी कम्पनियों ने Compact for safe cosmetics के नियन एवं विनियमन पर हस्ताक्षर किया है या नहीं।

अतः हमें इन उत्पादों को प्रयोग में लाने से पूर्व इनके घटकों/तत्वों की भलीभांति जानकारी कर लेनी चाहिए, जिससे इनके दुष्परिणामों से बचे रह कर इन उत्पादों का आनन्द ले सकें।

क्र.	सौन्दर्य उत्पाद	रसायनिक घटक
1	क्रीम, लोशन एवं मॉइश्चराइजर	ग्लिसरीन, मिनरल आइल, प्रोपाइलिन ग्लाइकोल, पेट्रोलेटम, मिथाइल पैराबेन, 1, 4-डाइओक्सेन, पोलिसोरबेट, स्टिरथ-2, स्टिराइल अल्कोहोल।
2	फेस पाउडर	सिलिका, ब्यूटाइलेटेड हाइड्रोक्सी टालूईन (बी.एच.टी), क्वाटरनियम-15, लेनालिन, इमिडैजोलिडिनाइल यूरिया, ट्राइक्लोसेन, फार्मेल्डिहाइड
3	काजल, आइलाइनर, मस्कारा	मिथाइल पैराबेन, ब्यूटाईल पैराबेन, प्रोपाईल पैराबेन, पॉलिबिनाइलपाइरोलिडोन, एल्यूमिनियम एण्ड ब्रोन्ज पाउडर
4	हेअर केयर उत्पाद जैसे-कण्डीशनर, कलरिंग, शैम्पू	डीएम डीएम हाइडेन्टोइन, इमिडाइएजोलिडिनाइल यूरिया, सीटीरेथ-20, प्रोपाइलिन ग्लाइकोल, रेटिनाइल पाल्मिटेट, थैलेट्स फिनाइलिनडाइऐमिन, लेड ऐसिटेट, रिर्सोसिनल, आक्सीबेन्जोन, डाइऐजोलिडिनाइल यूरिया, सोडियम लाऊरल सल्फेट, सोडियम लाऊरथ सल्फेट, मिथाइलआइसोथइएजोलिन अमोनियम लाऊरथ, मिथाइलक्लोरोथईएसोलिन।
5	डिओडरेन्ट	ऐल्यूमिनियम ट्राईक्लोरोहाइड्रेक्स, ऐल्यूमिनियम एलम, पोटेशियम एलम, ट्राईक्लोसेन, बेन्जाईल अल्कोहोल, थैलेट्स, ब्यूटाडाईन, पैराबेन्स आईसोब्यूटेन, 1,4-डाइओक्सेन
6	वाशिंग सोप	मिनरल ऑइल, वाटर, सोडियम लाऊरल सल्फेट, ट्राइक्लोसेन, ट्राइक्लोकारबन डाइसोडियम ईडीटीए, टाइटेनियम डाइआक्साइड।
	स्रोत	www.safecosmetics.org] www.cosmeticsdatabase.com] www.preventcancer.com] www.nottoopretty.org.

फ्लोराइड तथा पर्यावरण स्वास्थ्य

मीरा दुबे एवं जी.सी. किश्कू
पर्यावरण अनुवीक्षण प्रभाग, सी.एस.आई.आर.-भारतीय विषविज्ञान अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

सामान्यतः पानी एक सार्वभौमिक विलायक के रूप में जाना जाता है, क्योंकि इसके सम्पर्क में आते ही लगभग सभी पदार्थ घुलित हों जाते है। कुछ तत्व कम मात्रा में मानव स्वास्थ्य के लिए आवश्यक होते है जबकि उसकी उच्च सान्द्रता विषाक्त प्रभाव पैदा कर सकती है, फ्लोराइड उनमें से एक है।

बढ़ते शहरीकरण और आधुनिक उद्योगो की वृद्धि, फ्लोराइड युक्त खनिजों के भू-रासायनिक विघटन (फ्लोराइड के प्राकृतिक स्त्रोत) के कारण पर्यावरण सहित पानी में भी फ्लोराइड की मात्रा बढ़ती जा रही है। हमारे आहार में फ्लोराइड की छोटी सी मात्रा (0.6-1.2 मिलीग्राम/ली.) दन्तक्षय को रोकने और हड्डियों को मजबूत बनाने में मदद कर सकते है, लेकिन इसकी उच्च खुराक (>1.5 मिलीग्राम/ली.) से मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, जैसे-दन्त फ्लोरोसिस, कंकाल फ्लोरोसिस, जन्मदर का घटना, तेजगति से अस्थिभंग और गुर्दे में पथरी, थायराइड की क्रियाओं का बिगड़ना, बच्चों में कम बुद्धि जैसी सभी समस्याऐं फ्लोराइड के लगातार लम्बे समय तक प्रवेश के कारण होती है।

सीमा से अधिक मात्रा में फ्लोराइड की उपस्थिति मानव स्वास्थ्य दृष्टिकोण से एक गम्भीर चिन्ता का विषय है। तथ्य यह है कि पीने के पानी में फ्लोराइड की अधिकता से जुड़ी समस्याऐं अत्यधिक स्थानिक और भारत जैसे देशों में व्यापक हो गयी है। राजीव गाँधी राष्ट्रीय पीने जल मिशन 1983 द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट में दिल्ली सहित 15 राज्यों में फ्लोरोसिस को स्थानिक बीमारी के रूप में पहँचान की गयी है।

आधे से अधिक भारत में एक दर्जन राज्यों के माध्यम से बहने वाली कई नदियों में फ्लोराइड की मात्रा 0.1 से 12 मिलीग्राम/ली. सूचित है। इसी तरह फ्लोराइड युक्त पानी की सूचना आन्ध्र प्रदेश, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, गुजरात और उत्तर प्रदेश जैसे कई राज्यों में दी गयी है।

पर्यावरण में फ्लोराइड - फ्लोरीन (अधातु तत्व F_2) एक द्विपरमाणु गैस है, अपनी उच्च प्रतिक्रियाशीलता गुण के कारण कुछ औद्योगिक प्रक्रियाओं को छोड़कर यह अपने मौलिक गैसीय अवस्था में कभी नही रहते है।

चट्टानों के अपक्षय और पानी के संचालन के दौरान फ्लोराइड का रिसाव चट्टानों और मिट्टी में होता रहता है, जो भूगर्भीय जल और तापीय (थर्मल) गैसों में घुलित हो जाता है। भूगर्भीय सेटिंग्स और चट्टानों के प्रकार के आधार पर भू-जल में फ्लोराइड की मात्रा भिन्न-भिन्न होती है। फ्लोराइड सिलायट (Sellaite), फ्लोरस्पार (Fluorspar CaF_2) क्रायोलाइट (Cryolite Na_3AlF_6), फ्लोरएपेटाइट (Fluorapatite) के रूप में विशेष रूप से पाया जाता है। अन्य फ्लोराइड युक्त खनिजों की नीचे तालिका (1) में दिया गया है-

फ्लोरस्पार अवसादी चट्टानों में और क्रायोलाइट आग्नेय चट्टानों में पाया जाता है। ये फ्लोराइड युक्त

तालिका 1. फ्लोराइड युक्त खनिज

खनिज	रासायनिक सूत्र	फ्लोरीन प्रतिशत
सिलायट (Sellaite)	MgF_2	61
विलियामाइट (Villiamite)	NaF	55
फ्लोराइट (Fluorite or Fluorspar)	CaF_2	49
क्रायोलाइट (Cryolite)	$Na_3 AlF_6$	45
बास्टनेसाइट (Bastnaesite)	$(Ce, La)(Co_3)F$	9
फ्लोरएपेटाइट (Fluorapatite)	$Ca_3 (PO_4)_3 F$	3 - 4

खनिज पानी में अघुलनशील होते है।

पर्यावरण में फ्लोरीन प्राकृतिक और औद्योगिक दोनों ही स्त्रोतों से प्रवेश करते है। प्राकृतिक स्त्रोतों में समुद्री एयरोसोल्ज, ज्वालामुखी से उत्सर्जित गैस और वायुजनित धूल मिट्टी शामिल है जबकि औद्योगिक स्त्रोतो में ईट के कार्य (Brick work), एल्यूमीनियम प्रगालको, लौह और इस्पात उत्पादन, जीवाश्म ईधन के जलने, चीनी-मिट्टी उद्योग, प्लास्टिक, औषधि, कैमिकल और ऑटोमोबाइल उद्योगो तथा फॉस्फेट उर्वरको से उत्सर्जित होते है। इन स्त्रोतों से उत्सर्जित फ्लोराइड पर्यावरण में दोनो गैसीय (जैसे-HF, SiF_4 और H_2SiF_4) तथा कणों (जैसे-CaF_2, NaF vkSj Na_2SiF_6) के रूप में पाये जाते है। वायुमण्डलीय क्लारो फ्लोरो कार्बन (CFC) भी वर्षा के पानी में फ्लोराइड की मात्रा बढ़ाते रहते है।

फ्लोराइड के विभिन्न स्वास्थ्य प्रभाव -

फ्लोरोसिस - यह रोग एक गम्भीर स्वास्थ्य समस्या है जो फ्लोराइड के अधिक मात्रा में प्रवेश के कारण होती है। पानी द्वारा प्रवेश करने वाला फ्लोराइड 55 वर्ष की आयु में हड्डियों में जमा हो जाता है। उच्च मात्रा में फ्लोराइड कार्बोहाइड्रेट, लिपिड, प्रोटीन, विटामिन, एंजाइम और खनिज के चयापचय की क्रियाओं में हस्तक्षेप कर सकते है।

दन्त फ्लोरोसिस - 1 मिलीग्राम/ली. फ्लोराइड युक्त पानी के दीर्घकालिक खपत से दन्त फ्लोरोसिस होता है। दांतो पर सफेद और चमकदार पीले धब्बे पड़ जाते है, जो कि अन्त में भूरे रंग की क्षैतिज धारियों में बदल जाते है। जब ये धारियाँ काले रंग में बदलने लगते है तो ये पूरे दांतों को प्रभावित कर सकते है, जैसे पहले दांतों का घिसना, फिर दांतों में छेद और अन्त में दांतों का गिर जाना। डेन्टल फ्लोरोसिस न केवल सौन्दर्य प्रसाधन की समस्या है बल्कि बच्चों की वैवाहिक समस्याओं के सन्दर्भ में भी गम्भीर समस्या है।

कंकाल फ्लोरोसिस - यह समस्या उस व्यक्ति में देखी गयी जिनके पानी में फ्लोराइड 3-6 मिलीग्राम/ली. से भी अधिक शामिल है। कंकाल फ्लोराइड युवा और वृद्धों को प्रभावित करता है। यदि माता फ्लोराइड का अधिक मात्रा में सेवन पानी और भोजन के साथ करती है तो गर्भावस्था/स्तनपान के दौरान फ्लोराइड भ्रूण को भी नुकसान पहुँचा सकता है और रक्त वाहिकाओं के केल्सीकृत (Calcified) हो जाने से शिशु की मृत्यु भी हो सकती है।

लोग पानी में 18 मिलीग्राम/ली. फ्लोराइड की खपत कर लेते है। यह शरीर द्वारा दूषित पीने के पानी से आसानी से अवशोषित हो जाता है। अवशोषण के बाद फ्लोराइड आयन जल्द ही पूरे शरीर में वितरित हो जाता है जो आसानी से झिल्ली को पार करके ऊतकों में पहुँच जाता है। यह फ्लोराइड आयन (ऋणात्मक तत्व) दाँतो और हड्डियों के कैल्शियम (Ca^{++}) के साथ प्रतिक्रिया करके पूरे शरीर में जमा होने लगता है और कैल्शियम फ्लोरेफास्फेट (Fluorapatite) क्रिस्टल बनाता है, जो उसी ऊतक में अबाध (Unbound) कैल्शियम के रूप में रहता है और बाद केल्सीकृत (Calcified) होकर ऊतकों तथा जोड़ो की कठोरता का कारण बन जाता है और कंकाल फ्लोरोसिस में बदल जाता है। यही कारण है कि फ्लोराइड को हड्डी की खनिज मांग (Bone seeking mineral) और हड्डियों को फ्लोराइड का सिंक (Bone as sink for Fluoride) कहा जाता है। लगभग 90 प्रतिशत फ्लोराइड केल्सीकृत ऊतको के रूप में शरीर में प्राप्त होते है।

- रीढ़ की हड्डी में गम्भीर दर्द
- जोड़ो में दर्द
- कूल्हे क्षेत्र में गम्भीर दर्द
- रीढ़ की हड्डी की कठोरता
- स्थिर/कड़े जोड़ो का बनना
- हड्डियों की सघनता (मोटाई) में वृद्धि, इसके अलावा स्नायुबन्धन का केल्सीकृत (Calcified) बन जाना।
- नशों पर कशेरुका और अन्तकशेरुका रन्ध्र का दबाव का बनना।
- पक्षाघात (लकवा मारना)

गैर कंकाल (Non skeleton) फ्लोरोसिस - फ्लोराइड केवल हड्डी और दाँतो को ही नही प्रभावित करते हैं, बल्कि इसके अधिक उपयोग से कंकाल और दन्त फ्लोरोसिस के अलावा ये कई बीमारियों का कारण भी बन सकते है।

(1) स्नायविक अभिव्यक्तियाँ (Neurological Manifestation) - घबराहट, अवसाद और पैर की उंगलियों में झुनझुनी सनसनी बार बार पेशाब करने की प्रवृत्ति (पालीविडिपया और पालीयूरिया) प्रतिकूल असर दिखाई देता है, जो मस्तिष्क द्वारा नियन्त्रित होते है।

(2) पेशी अभिव्यक्तियाँ (Muscular Manifestations) - मांसपेशियों में कमजोरी, जकड़न, मांसपेशियों में दर्द और मांसपेशियों की शक्ति या ताकत में कमी।

(3) एलर्जी अभिव्यक्तियाँ (Allergic Manifestations) - त्वचा पर दर्दनाक चकत्ते, जो पेरीवेस्कुलर (Perivascular) सूजन होते है। वर्तमान में महिलाओं और बच्चों की त्वचा पर गुलाबी लाल व नीले लाल धब्बे पड़ जाते है, जो 7-10 दिनों में फीके

और साफ भी हो जाते है। ये धब्बे गोल या अण्डाकार आकार के होते है।

(4) जठरांत्र (Gastrointestinal) में समस्याऐं - पेट में तीव्र दर्द, दस्त, कब्ज, मल में रक्त, पेट में गैस का फुलाव, मतली (उल्टी) और मुँह मे घावों का आभास होना।

(5) सिर दर्द

(6) कम उम्र में दाँतो का गिरना (उग्र दन्तहीन)

फ्लोराइड की सान्द्रता और इसके जैविक प्रभाव के बीच सम्बन्ध संक्षेप में तालिका में दिये जा रहे हैं :-

तालिका-2 : फ्लोराइड की सान्द्रता और इसके जैविक प्रभाव

फ्लोराइड की सान्द्रता(पी.पी.एम.*)	माध्यम	प्रभाव
0.002 1	वायु पानी	वनस्पतियों की क्षति दन्तक्षय में कमी
2 या अधिक	पानी	धब्बेदार दन्तवल्क (दन्तफ्लोरोसिस)
8	पानी	आस्टियोस्कलेरोसिस (Osteosclerosis)
50	भोजन और पानी	थायराइड परिवर्तन
100	भोजन और पानी	विकास मन्दता
120	भोजन और पानी	गुर्दे में परिवर्तन
*पानी का माध्यम पी.पी.एम. को मिलीग्राम/ली. के समकक्ष लिया जा सकता है		

फ्लोराइड हटाने के उपाय - (Defluoridation method) Defluoridation (डिफ्लोरिडेशन) विधि तरीकों को मोटे तौर पर तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है-

1. रासायनिक एडीटिव विधि (Chemical additive method)
2. सम्पर्क वर्ष विधि (Contact Precipitation)
3. अवशोषण विधि/आयन एक्सचेंज विधि (Adsorption/Ion exchange method)

(1) रासायनिक एडीटिव विधि - इन विधियों में पानी में घुलनशील रसायन शामिल होते है। फ्लोराइड को वर्षण सह-वर्षण या अवशोषण द्वारा दूर किया जाता है। फिटकरी और छोटी मात्रा में चूने के उपयोग से बड़े पैमाने पर पीने के पानी को डि-फ्लोराइड किया जा सकता है। यह विधि लोकप्रिय नलगोडा तकनीक (RENDWN 1993) नाम से जानी जाती है। जहाँ ये भारत के शहर में पहली बार पानी में इस्तेमाल किया गया था। यह पानी में चूने (फिटकरी के 5 प्रतिशत), ब्लीचिंग पाउडर (वैकल्पिक) और फिटकरी ($Al_2(So_4)_3$ $18H_2O$) डालकर क्रमानुसार जमावट, अवसादन और निस्पादन द्वारा फ्लोराइड को दूर कर सकते है।

तालिका-3 : 10 प्रतिशत फिटकरी विलयन (ml) की अनुमानित मात्रा का उपयोग 40 लीटर के पानी में करके विभिन्न क्षारीयता और फ्लोराइड स्तर पर 1मिलीग्राम F/ली. फ्लोराइड प्राप्त करते है। 5 प्रतिशत फिटकरी के लिए चूने को डाला जाता है।

परीक्षण	पानी की क्षारीतया का परीक्षण mg $CaCO_3$/L में -							
पानी में फ्लोराइड (मिलीग्राम/ली.)	125	200	300	400	500	600	800	1000
2	60	90	110	125	140	160	190	210
3	90	120	140	160	205	210	235	310
4		60	165	190	225	240	275	375
5			205	240	275	290	355	405
6			245	285	315	375	425	485
8					395	450	520	570
10							605	675

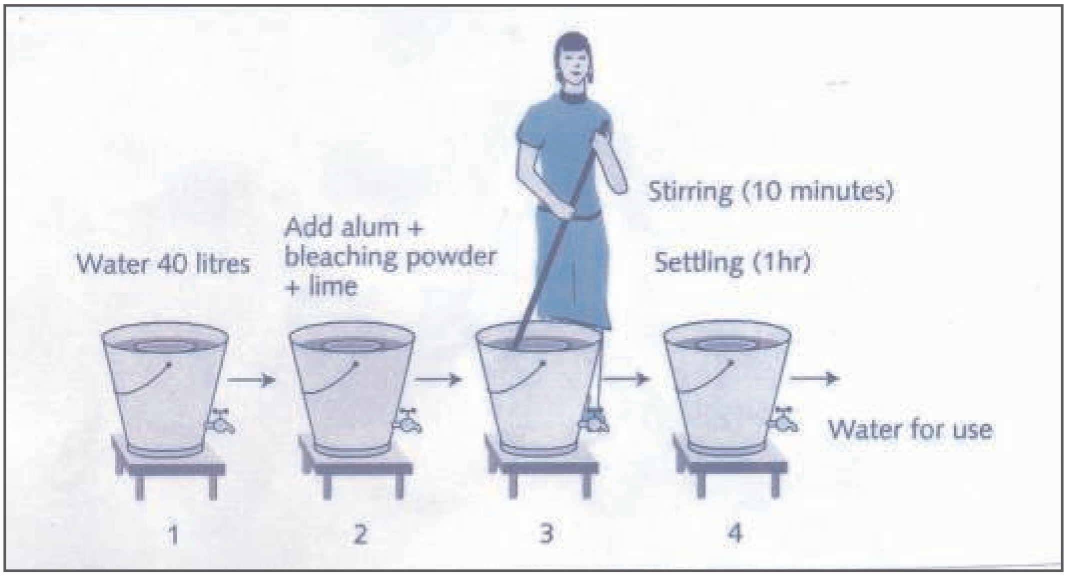

चित्र 3(a) गृह आधारित डिफ्लोरीडेशन के लिए नलगोडा तकनीक का उपयोग (RDNDWN,1993 से अनुकूलित)

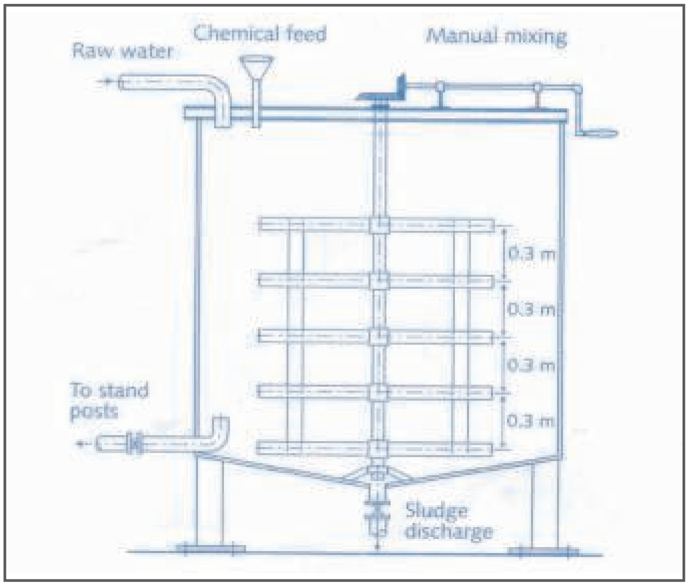

चित्र 3 (b) छोटे समुदाय के लिए "Fill-and-draw Defluoridation Plant"(RDNDWM, 1993 से अनकूलित)

(2) संपर्क वर्षण विधि - कैल्शियम और फास्फेट यौगिकों के माध्यम से पानी से फ्लोराइड दूर किया

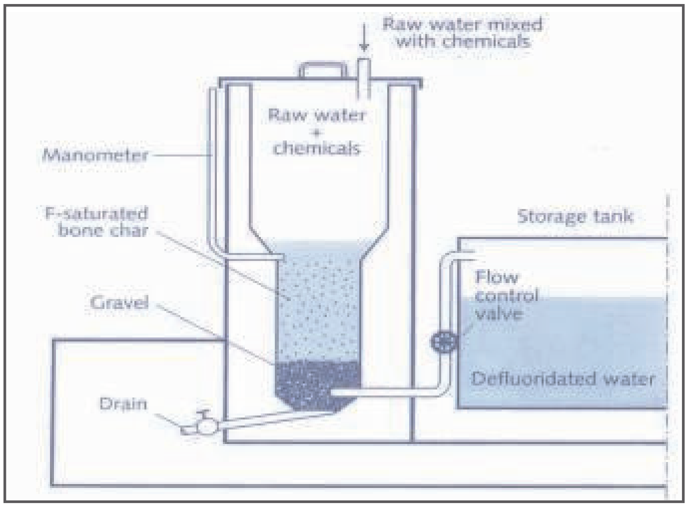

चित्र 3 (c) फ्लोराइड दूर करने की संपर्क वर्षण विधि (तंजानिया में ये डिजाइन प्रयोग किया जाता है)

जाता है। फ्लोराइड के वर्षण में बोन चारकोल की उपस्थिति एक उत्प्रेरक का काय्र करती है या तो CaF_2 के रूप में या फ्लोरएपेटाइट के रूप में।

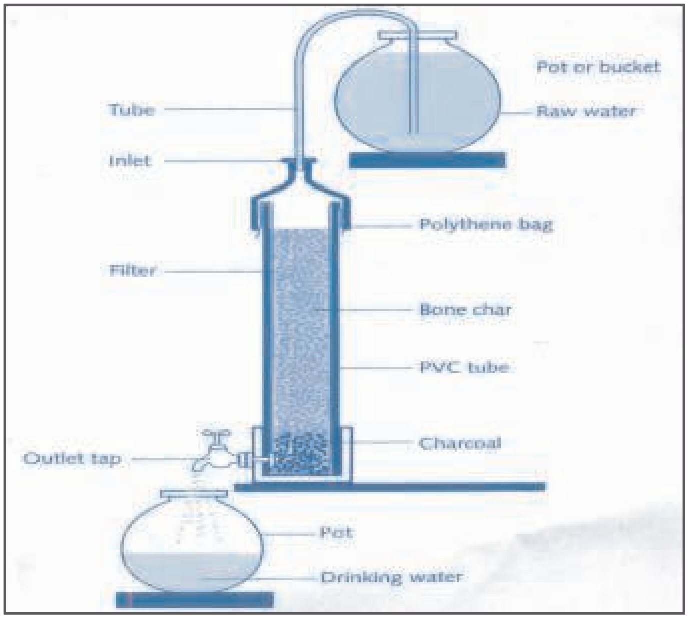

चित्र 3(d) बोन चार के द्वारा फ्लोराइड को दूर करना (घरेलू विधि)

(3) अवशोषण/आयन एक्सचेंज विधि - अवशोषण विधि में प्राकृतिक पानी को डिफ्लोरिडेटिंग पदार्थ के बेड के माध्यम से पारित करते है जो पदार्थ भौतिक, रासायनिक या आयन एक्सचेंज की प्रक्रिया से फ्लोराइड को बांधे रखता है। अवशोषक एक निश्चित अवधि के बाद संतृप्त हो जाता है, और इसी प्रकार दुबारा उपयोग में आता रहता है।

प्राकृतिक पदार्थ बॉक्साइट मैग्नेटाइट, Kaolinite, चिकनी मिट्टी (Clay) और लाल कीचड़ (रेड मड) विभिन्न प्रकार से फ्लोराइड को दूर करने में अध्ययन हो रहे है।

निष्कर्ष - भारत में फ्लोराइड समस्या एक छिपी हुई समस्या है, जो कभी भी महामारी के रूप में सम्पूर्ण देश में प्रकट हो सकती है। भारतीय वैज्ञानिक और भू-वैज्ञानिक को समय रहते इस समस्या का समाधान करना चाहिए तथा ऐसी तकनीक अपनानी चाहिए, जो प्राकृतिक पदार्थों द्वारा कम लागत से अधिक मात्रा में पानी से फ्लोराइड दूर कर सके।

"वैज्ञानिक तकनीकियों का विकास एवं कीटनाशकों का विश्लेषण"

सपना यादव, आशुतोष कु. श्रीवास्तवा, सत्यजीत राय, स्वाति सचदेव और लक्ष्मण प्रसाद श्रीवास्तव
कीटनाशक विष विज्ञान प्रयोगशाला, सी.एस.आई.आर. - भारतीय विषविज्ञान अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

भारत एक कृषि प्रधान देश है। वर्ष 2011 की जनगणना के ऑकड़ो के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या 1,241,491,960 है। देश की कुल जनसंख्या का 58.4 प्रतिशत कृषि कार्य में संलग्न है। अच्छी उपज एवं बेहतर गुणवत्ता की फसल हेतु किसानो द्वारा उर्वरको एवं कीटनाशको का अधिक मात्रा में प्रयोग किया जा रहा है। 2012 के ऑकड़ो के अनुसार भारत में कीटनाशको का प्रयोग 600 ग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से किया जा रहा हे।

भारत में वर्ष 1952 से डी.डी.टी. एवं बी.एच.सी. के निर्माण से कीटनाशको का उत्पादन प्रारम्भ हुआ। वर्तमान में सम्पूर्ण भारत में कीटनाशको का प्रति वर्ष उत्पादन लगभग 85,000 मैट्रिक टन है। अब तक कुल 237 कीटनाशक उपयोग हेतु पंजीकृत हैं। कीटनाशकों को सामान्यतः चार वर्गो में विभाजित किया गया है। ये चार वर्ग क्रमशः ऑरगेनोक्लोरीन, ऑरगेनोफास्फेट, कार्बामेट् एवं संश्लेषित पाइरेथ्राइडस है। ऑरगेनोक्लोरीन कीटनाशक को दीर्घकालीन कीटनाशक माना जाता है। इस वर्ग के कीटनाशकों का विघटन अधिकांशतः कई वर्षो मे होता है। इसके विपरीत ऑरगेनोफास्फेट्, कार्बामेट् एवं सश्लेषित पाइरेथ्राइड् को समकालीन कीटनाशक माना जाता है। इनका विघटन जल्दी हो जाता है। इन सभी कीटनाशको में से सबसे अधिक प्रयोग ऑरगेनोफास्फेट एवं कार्बमेट् का किया जाता है।

कीटनाशक शब्द का अर्थ है एक ऐसा रसायन जिसका उपयोग फसलो को कीटो से बचाने के लिए किया जाता है। यह रसायन विभिन्न प्रकार के जीवाणु, कीटो, फफूंद आदि जो हमारी खेती को नुकसान पहुँचाते है उनको नष्ट करते है। किसानो द्वारा छिड़काव के दौरान कीटनाशक फसल के साथ साथ मृदा, जल एवं वायु में प्रवेश कर जाते है। ये कीटनाशक खाद्य श्रृखंला एवं श्वास के माध्यम से मनुष्य के शरीर में पहुँचते है। ये कीटनाशक विषैले होते है। ऑरगेनोफास्फेट कीटनाशक न्यूरोट्रान्समीटर एन्जाइम को बाधित कर मनुष्य के तंत्रिका तंत्र को प्रभावित करते है जिसका सीधा असर हमारे मस्तिष्क पर पड़ता है। किसानो को इन रसायनों के ज्यादा सम्पर्क में रहने से त्वचा सम्बन्धी और श्वास सम्बन्धी बीमारियाँ होती है। विभिन्न कीटनाशको हेतु भिन्न-भिन्न खाद्य पदार्थो में उनकी उपभोगता के आधार पर भिन्न-भिन्न MRL (Maximum Residue Limit) Value का आंकलन किया गया है। कुछ कीटनाशको की MRL Value सारणी-1 में दी गयी हे।

सारणी-1

क्र.सं.	कीटनाशक का नाम	खाद्य पदार्थ का नाम	MRL (मिलीग्राम/ किलोग्राम)
1	एलाक्लोर (Alachlor)	मूँगफली मक्का सोयाबीन	0.05 0.10 0.10
2	एल्ड्रिन, डाइएल्ड्रिन (Aldrin, Dieldrin)	अनाज दूध एवं उसके उत्पाद फल एवं सब्जियाँ मांस अण्डा	0.01 0.15 0.10 0.20 0.10
3	एल्डीकार्ब (Aldicarb)	आलू तम्बाकू	0.50 0.10
4	केप्टॉन (Captan)	फल एवं सब्जियाँ	15.00
5	कार्बरिल (Carbaryl)	अनाज भिण्डी एवं पत्तेदार सब्जिया	0.5 10.00
6	डी.डी.टी. (Dichlorodiphenyl trichloroethane)	दूध एवं उसके उत्पाद फल एवं सब्जियाँ मांस अण्डा	1.25 3.5 7.00 0.5
7	एच.सी.एच. (Hexachlorocyclohexane) (क) α HCH	चावल (Polished) दूध	0.05 0.05
	(ख) β HCH	चावल (Polished) दूध	0.50 0.02
	(ग) γ HCH	चावल (Polished) दूध फल एवं सब्जियाँ	0.05 0.01 3.00

8	δ HCH	चावल (Polished) दूध	0.05 0.02
9	साइपरमेथ्रिन (Cypermethrin)	गेंहू बेंगन मांस दूध एवं उसके उत्पाद	0.05 0.20 0.20 0.01
10	एथियॉन (Ethion)	चाय कपास के बीज दूध एवं उनके उत्पाद मांस अण्डा अनाज	5.00 0.50 0.50 0.20 0.20 0.025

अतः हानिकारक कीटनाशक अवशेषों, जो कि किसान द्वारा छिड़काव के दौरान खाद्य पदार्थों में सम्मलित होकर हमारी खाद्य श्रृंखला का हिस्सा बनकर हमें रोगग्रस्त करते हैं, का विश्लेषण उचित तकनीकी द्वारा करना अति आवश्यक होता जा रहा है।

विश्लेषण तकनीकी एवं उनका विकास

कीटनाशकों को विश्लेषित करना एक गम्भीर समस्या है क्योंकि कीटनाशकों में बहुत से रसायन सम्मलित होते हैं। विश्लेषण हेतु प्रयुक्त विधि का उच्च संवेदनशील, चयनशील, यथार्थ, निम्न लागत एवं एक विस्तीर्ण सीमा (Long range) के नमूनों के लिए प्रयोज्य होना आवश्यक है। पिछले कुछ वर्षों में कीटनाशक बहुअवशेषी विश्लेषण तकनीकियों में अत्यधिक सुधार एवं प्रसार हुआ है। पूर्व के वर्षों में प्रयुक्त की जाने वाली विधियों को मान्यता दी गयी एवं यंत्रो को नियंत्रित करने की तकनीकी में सुधार किये गये। कीटनाशकों के विश्लेषण के द्वारा इनकी चयनात्मकता एवं जाँच की सीमा का आंकलन करने के क्षेत्र में नई तकनीकियों का विकास हुआ। इन तकनीकियों के विकास से दिन प्रति दिन कीटनाशकों का विश्लेषण और सरल एवं यथार्थ होता जा रहा है।

रसायनिक यौगिको के विश्लेषण का आरम्भ 1940 के दशक के प्रारम्भिक वर्षों में हुआ। कीटनाशकों को विश्लेषित करने के लिए ग्रेविमेट्रिक (Gravimetic) एवं बायोऐस्से (Bioassay) तकनीकी का प्रयोग किया जाता था। इन तकनीकियों के माध्यम से 1 माइक्रोग्राम/ग्राम अथवा इससे अधिक सान्द्रता वाले नमूनों का ही विश्लेषण सम्भव था। माइक्रोग्राम/ग्राम को ppm (parts per million) भी कहते है। यह सान्द्रता की इकाई है। इन तकनीकियों के माध्यम से कीटनाशकों की जाँच की सीमा का न्यूनतम सीमा का स्तर काफी अधिक था। साथ ही ये तकनीकियाँ मिश्रित कीटनाशकों को एक साथ विश्लेषित करने में असमर्थ थी। समय के सन्दर्भ में भी ये तकनीकियाँ उपयुक्त नही

थी। अतः इन तकनीकियों में उचित रूपान्तरण की आवश्यकता थी।

1950 के दशक से कलरीमेट्रिक (Calorimetic) एवं स्पेक्ट्रोफोटोमेट्रिक (Spectrophotometic) तकनीकी के प्रयोग से कीटनाशक अवशेषों का विश्लेषण करना सरल हुआ। इन तकनीकियों के प्रयोग से विशिष्टता में सुधार हुआ। इन तकनीकियों के माध्यम से कीटनाशकों के विश्लेषण करने की निम्न सीमा का निर्धारण स्तर घटा। जहाँ हम ग्रेविमेट्रिक एवं बायोएस्से के माध्यम से केवल 1 माइक्रोग्राम/ग्राम अथवा इससे अधिक सान्द्रता के नमूनों का ही विश्लेषण कर सकते थे। इन तकनीकियों के प्रयोग से 0.1 माइक्रोग्राम/ग्राम तक की सान्द्रता के नमूनों का विश्लेषण करना भी सम्भव हो सका। कुछ रसायन जो रंगहीन होते थे उनके विश्लेषण हेतु उनका व्युत्वीकरण (Derivatization) किया जाना आवश्यक होता था। अतः यह विधि भी उचित मानको पर खरी नही उतर सकी।

माइकॅल स्वेट ने 1906 ई. में अपने एक प्रयोग, जो पौधो के वर्ण पृथक्करण पर आधारित था, के द्वारा वर्णलेखन की खोज की। वर्णलेखन एक ऐसी तकनीकी है जिसके माध्यम से हम मिश्रित यौगिकों को पृथक करते हैं। पृथक किये गये यौगिको की पहचान विभिन्न Detectors की सहायता से की जाती है। वर्णलेखन के क्षेत्र में वर्ष 1952 ई. में जे.पी.मारटिन एवं आर.एल.एम. सिंगी को विभाजन वर्णलेखन (partition chromatography) की खोज हेतु रसायन में नोबेल पुरुस्कार प्राप्त हुआ। इस तकनीकी का प्रयोग यौगिको के पृथक्करण एवं उनके विश्लेषण हेतु किया जाने लगा। पहली बार रसायनग्य कागज वर्णलेखन (Paper Chromatography) एवं पतली परत वर्णलेखन (Thin Layer Chromatography) विधि के माध्यम से मिश्रित रसायनो को एक ही साथ विश्लेषित करने में सफल हुए। इस विधि के आ जाने से दवाओं, प्राकृतिक उत्पादो, कीटनाशकों एवं अन्य रसायनों का विश्लेषण करना सरल हो गया था। इस विधि के माध्यम से 0.01 माइक्रोग्राम प्रति ग्राम की सान्द्रता तक के नमूनो का विश्लेषण करना सम्भव हो गया था। सन् 1960 के दशक में वर्णलेखन तकनीकी के क्षेत्र में मूलभूत परिवर्तन हुए और उच्च तकनीकी जैसे उच्च दाब द्रव वर्णलेखन (H.P.L.C.) एवं वायु वर्णलेखन (G.C.) की खोज हुई। इन तकनीकियों के प्रयोग से हमारे ऑकड़ो की विश्वसनीयता का विकास हुआ, साथ ही निम्न सीमा का पता लगाने का स्तर भी घटा। इन तकनीकियों के प्रयोग से हम 0.001 माइक्रोग्राम प्रति ग्राम की सान्द्रता तक के नमूनो का विश्लेषण करने में सफल हुए। ये नई तकनीकियाँ उच्च संवेदनशील एवं चयनशील थी। पूर्व में गैस वर्ण लेखन में पैक्ड कॉलम (Packed Column) का प्रयोग किया जाता था जो कम लम्बाई के होने के कारण कम यौगिको का ही पृथक्करण एवं विश्लेषण करने में सक्षम थे। इन कॉलम को कैपिलरी कॉलम (Capilary Column) में रुपान्तरित करके इस तकनीकी की उपयोगिता को कई गुना गढ़ा दिया गया। गैस वर्णलेखन तकनीकी केवल वाष्पशील कीटनाशको के विश्लेषण हेतु प्रयुक्त की जा सकती है। अवाष्पशील कीटनाशकों के विश्लेषण हेतु एच.पी.एल.सी. का प्रयोग करना पड़ता है। इन तकनीकियों के प्रयोग से वातावरण खाद्य पदार्थो, मानव रक्त तथा ऊतको में कीटनाशकों का अध्ययन करना बहुत ही सरल हो चुका था। इन तकनीकियों का लाभ उठाते हुए हमारे शोधकर्ताओं ने

विभिन्न क्षेत्रो में अध्ययन कर विभिन्न कीटनाशकों के उच्चतम स्तर को हमे अवगत कराया जो कि हमारे लिए धीरे-धीरे घातक होते जा रहे थे। इस दौर में यह तकनीकियां रसायन विज्ञान के क्षेत्र में एक बड़ी उपलब्धि थी।

तकनीकी का प्रयोग शुरू हुआ। इस तकनीकी में वर्णलेखन पद्धति को मास स्पेक्ट्रो मेट्री से जोड़ा गया। इस तकनीकी की सबसे बड़ी उपलब्धि किसी भी रसायन को उसके द्रव्यमान एवं आवेश के अनुपात के आधार पर पहचान करना था। यह तकनीकी दोनों प्रकार की वर्णलेखन तकनीकियों क्रमशः द्रव वर्णलेखन एवं गैस वर्णलेखन में प्रयुक्त की गई और द्रव-वर्णलेखन मास स्पेक्ट्रोमीटर (एल.सी.एम.एस.) एवं गैस वर्णलेखन मास स्पेक्ट्रोमीटर (जी..सी.एम.एस.) के रूप में उभर कर सामने आई। ये तकनीकियाँ अत्यधिक संवेदनशील है एवं इनकी चयनात्मकता अधिक है। इन तकनीकियों के माध्यम से 0.0001 माइकोग्राम प्रति ग्राम की सान्द्रता के रसायनिक नमूनो का विश्लेषण किया जा सकता है। यह तकनीकी यौगिको की लगभग पूर्ण पुष्टि हेतु प्रयुक्त की जाती है।

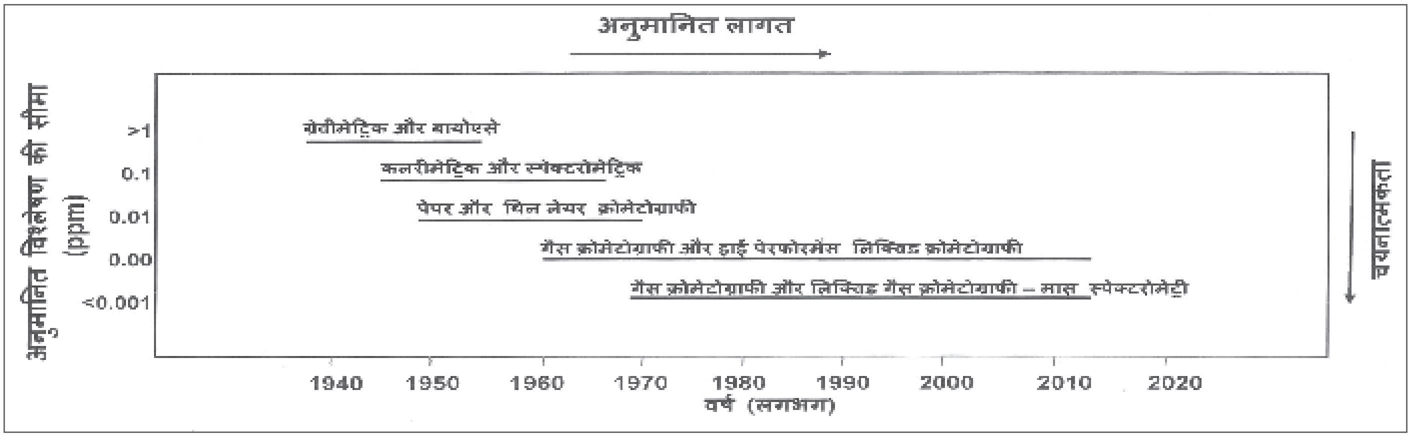

चित्र 1 - नमूनों में कीटनाशकों के लिए विश्लेषणात्मक पद्धति का विकास

इन तकनीकियों का उपयोग करते समय कुछ महत्वपूर्ण कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। उदाहरण के लिए जब किसी खाद्य पदार्थ या जानवरों के ऊतको में कीटनाशकों के स्तर का विश्लेषण किया जाता था तो कीटनाशको के साथ-साथ कुछ समान द्रव्यमान एवं प्रकृति के प्राकृतिक यौगिक तथा जीव यौगिक भी इन कीटनाशकों के साथ मिलकर इनके विश्लेषण में हस्तक्षेप उत्पन्न करते थे। जिस के कारण कीटनाशकों की पहचान यथार्थ रूप में नही हो पाती थी। इन कठिनाइयों को दूर करने के लिये एक नई

सारणी-2 : कीटनाशकें के विश्लेषण हेतु विभिन्न तकनीकियाँ

क्र.सं.	कीटनाशक वर्ग	तकनीकी
1	ऑरगेनाक्लोरीन्स	GC-ECD, GC-MS, GC-MS-MS
2	ऑरगेनोफास्फट्स	GC-NPD, GC-MS, GC-MS-MS
3	कार्बामेट्स	GC-FID, HPLC, LC-MS, LC-MS-MS
4	संश्लेषित पाइरेथ्राइट्स	GC-ECD, GC-MS, GC-MS-MS

कीटनाशकों का पृथक्करण

जल, भोजन, मृदा, वायु आदि में कीटनाशकों की सान्द्रता सामान्यतः बहुत कम होती है अतः इनका प्रत्यक्ष निर्धारण करना सम्भव नही है। इन नमूनो से कीटनाशकों का विश्लेषण करने से पूर्व कीटनाशकों को पृथक करके उसका सान्द्रण करना आवश्यक है। इसका उपयोग कीटनाशक अवशेषों का पता लगाने की निम्न सीमा के स्तर को कम करने के लिए विशेष रूप से किया जाता है। कई अलग अलग तकनीकियों के माध्यम से कीटनाशकों का संवर्धन एवं पृथक्करण किया जाता है लेकिन प्रत्येक विधि की अलग अलग सीमाये हैं। कीटनाशक के नमूने को सामान्यतः द्रव द्रव निष्कर्षण (एल.एल.ई.) अथवा ठोस अवस्था निष्कर्षण (एस.पी.ई.) द्वारा संवर्धित किया जाता है। द्रव-द्रव निष्कर्षण विधि जलीय नमूनों से कीटनाशक अवशेषों को अमिश्रणीय विलायक में स्थनान्तरित करने के नियम पर आधारित है। कीटनाशकों के नमूनों को तैयार करने के लिए यह विधि व्यापक रूप में कार्यरत है। इस प्रक्रिया की दक्षता विश्लेषक एवं विलायक के बीच बन्धुता एवं निष्कर्षा में प्रयुक्त होने वाले विलायक के अनुपात एवं निष्कर्षण के चरणों की संख्या पर निर्भर करता है। कुछ कमियों जैसे पायस गठन (Emulsion Formation) नमूनों एवं विषैले कार्बनिक विलायकों के अधिक मात्रा में प्रयोग आदि से पर्यावरण प्रदूषण होता है। यह विधि अधिक श्रम एवं समय लेने के साथ साथ मंहगी भी है। इसके अलावा ध्रुवीय (Polar) कीटनाशकों को अध्रुवीय (Non-Polar) विलायकों के द्वारा निष्कर्षित किया जाना सम्भव नही है।

नमूनों को तैयार करने की एक अन्य विधि ठोस अवस्था निष्कर्षण (एस.पी.ई.) है। यह विधि द्रव-द्रव निष्कर्षण की तुलना में कम विलायक की उपस्थिति में की जाती है। ठोस पदार्थो से कार्बनिक यौगिकों के निष्कर्षण हेतु सॉक्सलेट या अल्ट्रासोनिक विधि का प्रयोग किया जाता है। पिछले कुछ वर्षों के दौरान कई निष्कर्षण तकनीकियों का विकास हुआ जिन्होने पारम्परिक विधियों को स्थानान्तरित किया है। आज पदार्थों से कीटनाशकों के निष्कर्षण की कई विधियाँ खोजी गई है। ये विधियाँ अत्यन्त प्रभावी है। कुछ विधियों जैसे प्रेशराइज्ड द्रव निष्कर्षण (पी.एल.ई.) अथवा त्वरित विलायक निष्कर्षण (ए.एस.ई.), माइक्रोवेव सहायक निष्कर्षण (एम.ए.ई.), अल्ट्रासोनिकेटेड निष्कर्षण (यू.ए.ई.), सूपरक्रिटिकल द्रव निष्कर्षण (एस. एल.ई.), सबक्रिटिकल जल निष्कर्षण, ठोस अवस्था सूक्ष्म निष्कर्षण (एस.पी.एम.ई.), द्रव अवस्था सूक्ष्म निष्कर्षण (एल.पी.एम.ई.) आदि ऐसी ही कुछ प्रभावी विधियाँ हैं।

उपर्युक्त विधियों में अधिक लागत लगती थी। अतः इस समस्या से निपटने हेतु 2003 में लेहोटे ने QuEChERS विश्लेषण तकनीकी का विकास किया। यह एक सरल विधि है एवं इसमें समय एवं लागत भी कम लगती है। विज्ञान का क्षेत्र बहुत बड़ा है। नित्य नये-नये विकास होते रहते है। आशा है भविष्य में अन्य इससे भी उत्तम तकनीकियों का विकास सम्भव है जिससे विश्लेषण करना और भी सरल तथा विश्वसनीय हो जायेगा।

तालिका-3 : नमूनों से कीटनाशकों के निष्कर्षण हेतु प्रयुक्त विभिन्न तकनीकों का तुलनात्मक विश्लेषण

निष्कर्ष तकनीक	विलायक का प्रकार/निष्कर्षण में लगा समय/विलायक की खपत	तापमान/दाब/लागत	उपयोगिता	अनपयोगिता
द्रव-द्रव निष्कर्षण (एल.एल.ई.)	कार्बनिक विलायक/1-2 घण्टा/200-500 मिली.	विलायक का क्वथनांक/सामान्यदाब/अधिक लागत	कम से कम सान्द्रता के कीटनाशकों का निष्कर्षण आसानी से सम्भव है	अधिक श्रम, अधिक लागत एवं स्वास्थ्य को विलायक से हानि होती है
ठोस अवस्था निष्कर्षण (एस.पी.ई.)	कार्बनिक विलायक/30-60 मिनट/10-20 मिली.	सामान्य ताप/अधिक दाब/कम लागत	कम समय एवं कम लागत में जल्द होने वाली विधि है।	एक से अधिक वर्ग के कीटनाशकों के निष्कर्षण में असुगम है।
ठोस अवस्था सूक्ष्म निष्कर्षण (एस.पी.एम.ई.)	कार्बनिक विलायक/15-30 मिनट/1-2 मिली.	सामान्य ताप/सामान्य दाब/अधिक लागत	संचालन में सरल है एवं पर्यावरण प्रदुषण मुक्त है	इसमें अधिक लागत लगती है। इसमें प्रयुक्त होने वाले बहुलको का आवरण आसानी से क्षय हो जाता है एवं इनका जीवन काल बहुत कम होता है
सॉक्सलेट	कार्बनिक विलायक/6-24 घण्टा/60-500 मिली.	विलायक का क्वथनांक/वातावरणीय दाब/कम लागत	निस्पंदन की आवश्यकता नही होती है, मैट्रिक्स निर्भर	निष्कर्षण में अधिक समय एवं कार्बनिक विलायक की खपत होती है

			नही करता एवं संचानल करना आसान होता है	
अल्ट्रासोनी केसिसटेड निष्कर्षण	कार्बनिक विलायक / 30-60 मिनट / 30-100 मिली.	30-35 डिग्री सेल्सीएस / वातावरणीय दाब / कम लागत	कम समय में होने वाली सरल विधि है	निष्कर्षण में निस्पन्दन की आवश्यकता होती है अधिक विलायक के प्रयोग से स्वास्थ्य को हानि होती है
क्वीचरस विधि	कार्बनिक विलायक 30-60 मिनट / 20-50 मिली.	सामान्य ताप / सामान्य दाब / कम लागत	कम समय, कम विलायक एवं कम श्रम की आवश्यकता होती है	इस विधि द्वारा जल में कीटनाशकों का निष्कर्षण सम्भव नही हो पाया है क्योंकि जल में कीटनाशकों का स्तर बहुत कम होता है तथा अन्य समस्याएँ आती है

<u>सुझाव</u>

प्रश्न यह है कि वर्तमान विश्लेषण विधियों में क्या और अधिक सुधार किया जा सकता है। उत्तर निश्चित रूप से हाँ में होगा। हम निम्न क्षेत्रों में सुधार कर सकते है-

1) ऐसी निष्कर्षण विधियों की खोज की जाए जिससे हम पदार्थ में उपस्थित कीटनाशकों की मात्रा का अधिक ये अधिक निष्कर्षण कर सके।

2) निष्कर्षण के समय प्रयुक्त किये जाने वाले रसायनों एवं विलायको की शुद्धता के प्रतिशत का स्तर अधिकतम हो।

3) कीटनाशक विश्लेषण में प्रयुक्त होने वाले उपकरण बहुमूल्य होते हैं। जिसके कारण ये उपकरण बडे अनुसंधान संस्थान, उच्च चिकित्सालयों तथा बडे रसायन कारखानों तक ही सीमित है। इस कारण छोटे शहरों तथा स्थानों में विश्लेषण कर पाना सम्भव नही हो पाता है। अतः कम लागत के संवेदनशील उपकरणों की खोज की जाने की आवश्यकता है।

4) विश्लेषण में प्रयुक्त होने वाले उपकरणों का आकार बहुत बड़ा होता है जिस कारण इन्हें प्रदूषित स्थान तक लाने एवं वापस ले जाने में कठिनाइयों का सामना करना पडता है। अतः इनका आकार छोटा होना चाहिए। जिससे इन्हें सुगमता से स्थानान्तरित किया जा सके। इसके लिए चलित प्रयोगशाला का उपयोग होना चाहिए।

खाद्य संदूषण एवं मिलावट - कितने सुरक्षित हम

सुमिता दीक्षित एवं मुकुल दास
खाद्य विषविज्ञान विभाग, सी.एस.आई.आर-भारतीय विषविज्ञान अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

भोजन हमारे जीवन का अति आवश्यक आधार है जो शरीर के विकास एवं रख-रखाव में मदद करता है। मानव समाज की एक प्रमुख चिंता शुद्ध भोजन की प्राप्ति एवं उसे अपने परिजनों को उपलब्ध कराना है।

आधुनिक कृषि के तौर-तरीके में विकास के साथ, खाद्य संरक्षण और प्रसंस्करण को आवश्यक समझा गया, जिससे कि पूरे वर्ष पर्याप्त मात्रा में भोजन आपूर्ति को सुनिश्चित किया जा सके। विकसित और विकासशील देशों में बदली हुई जीवन शैली ने प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थ की मांग को बढ़ावा दिया है। प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थ कई विकसित देशों में आधे से अधिक आहार का प्रतिनिधित्व करते हैं। खाद्य प्रसंस्करण उद्योग में तीव्र विकास के साथ तकनीकी प्रयोजनों के लिए विभिन्न खाद्य एडीटिव्स की मांग भी बढ़ गई है। प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थ में एडीटिव्स का प्रयोग विभिन्न देशों में मान्य हो गया है तथा उनकी स्वीकार्य स्तर की सीमा निर्धारित कर दी गई है। यह एडीटिव्स पोषक तत्व की गुणवत्ता को बढ़ाने के साथ-साथ उत्पादों की सेल्फ लाइफ को भी बढ़ा देते हैं। इनके उपयोग से विशेषतः विकासशील देशों में(जहाँ आधुनिक भण्डारण एवं पर्याप्त परिवहन सुविधाओं के अभाव हैं) मौसमी अधिशेष के अपव्यय से बचा जा सकता है। इसके अलावा उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में जहाँ उच्च तापमान और आर्द्रता, सूक्ष्म जीवों एवं ऑक्सीडेटिव विकृत गंधिका (Rancidity) के लिये सहायक होते हैं, वहाँ पर इन एडीटिव्स का प्रयोग खाद्य पदार्थों में फायदा पहुँचाता है।

परन्तु खाद्य सुरक्षा एवं गुणवत्ता वैश्विक चिंता के रूप में उभरकर सामने आयी है। खाद्य पदार्थों में मौजूद रसायनिक एडीटिव्स, संदूषण, मिलावट और प्रदूषकों की सुरक्षा पर समय-समय पर वैज्ञानिक और सार्वजनिक बहस में बल दिया गया है। अतः अनिवार्य रूप से सुरक्षित भोजन की आपूर्ति के लिए मांग बढ़ गई है। खाद्य संदूषण से कई हानिकारक रसायन और सूक्ष्म जीव भोजन के माध्यम से पहुँचकर उपभोक्ता को बीमार करते हैं। उपभोक्ता के स्वास्थ्य पर रसायनिक संदूषण का प्रभाव लंबे अन्तराल के बाद प्रदर्शित होता हे। रसायनिक संदूषण अक्सर थर्मल प्रसंस्करण से अप्रभावित रहते है। आमतौर पर प्रदुषक, संदूषण एवं मिलावट जो खाद्य उद्योग और उपभोक्ताओं के लिए चिंता का विषय रहा है, मोटेतौर पर दो वर्गो में बांटे जा सकते हैं।

(अ) जानबूझकर मिलाए गए तत्व एवं (ख) अपने आप पनपने वाले तत्व

पहली श्रेणी में वे रसायन आते हैं जो निम्न श्रेणी के उत्पाद की खराबी को छुपाने के लिए या अनुचित लाभ कमारे के उद्देश्य से जानबूझकर डाले जाते हैं। दूसरी श्रेणी में अपने आप पनपने वाले संदूषण आते हैं जो उत्पादन, प्रसंस्करण, पैकेजिंग और भण्डारण के दौरान आ जाते हैं, जैसे सूक्ष्म जीव संदूषण या धातु संदूषण इत्यादि।

खाद्य पदार्थों में जानबूझकर मिलाए गए तत्त्व : -

1. संश्लेषित रंग :-

संश्लेषित रंग खाद्य वस्तुओं में प्राकृतिक रंग को बनाए रखने के लिए, बैच दर बैच की विविधता को कम करने के लिए और उन उत्पादों में जिनमें कोई प्राकृतिक रंग नहीं है, उनको आकर्षण बनाने के लिए डाला जाता है।

(चित्र-1) खाद्य पदार्थों में संश्लेषित रंग

भारतीय खाद्य उपमिश्रण अधिनियम (PFA) जो अब भारतीय खाद्य सुरथा और मानक अधिकार (FSSAI) से जाना जाता है, के अन्तर्गत आठ कृत्रिम रंगों का प्रयोग करने की अनुमति दी गई है (तालिका-1)। इसके साथ ही इन रंगों की अधिकतम स्वीकार्य स्तर (Maximum Permissible Limit) व्यक्तिगत या मिश्रण रूप में 100 पी.पी.एम. तथा डिब्बाबन्द सामानों में 200 पी.पी.एम. आंकी गई है। यह भी नियम बनाया गया है कि खाद्य सामग्री में अगर संश्लेषित रंग मिलाया गया है तो उसकी जानकारी पैकेट पर अवश्य की जाए, परन्तु इसका उल्लंघन किया जाता है।

तालिका -1: खाद्य अपमिश्रण अधिनियम के अन्तर्गत अनुमोदित रंगों की सूची:-

क्रमांक	नाम	रसायनिक वर्ग	रंग
1	बी.बी.एफ.सी.एफ.	ट्राई एराइल मिथेन	नीला
2	कारमाइजीन	मोनो एजो	लाल
3	इरीथ्रोसिन	जेंथीन	लाल
4	एफ.जी. एफ.सी.एफ	ट्राई एराइल मिथेन	नीला
5	इण्डिगोकार्मीन	इण्डिगोयड	नीला
6	पान्सियू-4 आर.	मोनोएजो	लाल
7	सनसेट एलो एफ.सी.एफ.	मोनोएजो	नारंगी
8	टारट्राजीन	मोनोएजो	पीला

दूसरी ओर यह भी पाया गया है कि शहरी और ग्रामीण बाजारों में मिलने वाले अधिकतम खाद्य पदार्थों में या तो गैर अनुमोदित रंग मिलाए जाते हैं (तालिका-2) अथवा अनुमोदित संश्लेषित रंगों का अपने अधिकतम स्वीकार्य स्तर से ज्यादा प्रयोग होता है।

अध्ययन से यह पता चलता है कि विभिन्न गैर अनुमोदित रंग प्रायोगिक पशुओं में प्रतिकूल प्रभाव पैदा करते हैं। आरेंज-2, ऑरामीन, रोडामीन-बी., ब्लू.वी. आर.एस., मैलाकाइट ग्रीन और सुडान-3 जैसे रंग, तिल्ली, गुर्दे और जिग़र जैसे महत्पूर्ण अंगो को प्रभावित करते हैं। मैटानील यलो गैर अनुमोदित रंगों में सबसे लोकप्रिय पीला रंग है, जो वृषण, अंडाशय, जिगर, तिल्ली और गुर्दे में अपक्षयी परिवर्तन (degenerative changes) करता है।

तालिका-2 : कुछ गैर अनुमोदित रंगों की सूची जो अक्सर खाद्य पदार्थों में पाए जाते है।

क्रमांक	नाम	रसायनिक वर्ग	रंग
1	एमरैंथ	मोनोएजो	लाल
2	ऑरामीन	डाईएराइल मिथेन	पीला
3	ब्लू.वी.आर.एस.	ट्राई एराइल मिथेन	नीला
4	कांगो रेड	डाइएजो	लाल
5	फास्ट रेड ई	मोनोएजो	लाल
6	ग्रीन एस.	ट्राई एराइल मिथेन	हरा
7	मैलाकाइट ग्रीन	ट्राई एराइल मिथेन	हरा
8	मैटानिल यलो	मोनोएजो	पीला
9	आरेंज-2	मोनोएजो	नारंगी
10	रोडामीन बी	जेंथीन	गुलाबी
11	सुडान-1	मोनोएजो	लाल
12	सुडान-2	मोनोएजो	लाल
13	सुडान-3	डॉइएजो	लाल
14	सुडान-4	डॉइएजो	लाल
15	रतनज्योत	अल्कानेट	लाल

2. खाद्य तेल में मिलावट :-

आर्जीमोन तेल

आर्जीमोन मेक्सिकाना एक जंगली पौधा है और इसके बीज सरसों के बीज से मिलते-जुलते हैं (चित्र-2)। आर्जीमोन मिली हुई सरसों के तेल के खपत से एपीडेमिक ड्राप्सी नामक बीमारी हो जाती है। सरसों के तेल में आर्जीमोन तेल की मिलावट की समस्या अभी भी मौजूद है, जिसके ज्वलंत उदाहरण के रूप में 1998 में दिल्ली, 2000 में ग्वालियर, 2002 में कन्नौज और

2005 में लखनऊ में फैली एपीडेमिक ड्राप्सी प्रमुख है। आर्जीमोन तेल की विषाक्तता के लिए उसके दो प्रमुख अलक्लायड सैंग्यूनरिन और डाइहाईड्रोसैंग्यूनरिन को जिम्मेदार माना गया है (चित्र-3)। विषाक्त आर्जीमोन तेल मिली सरसों के तेल के सेवन से उल्टी, दस्त, बुखार, शरीर में लाल चकत्ते, निचले अंगों में सूजन तथा कभी-कभी हृदय और श्वास की बीमारी के कारण मौत भी हो सकती है। अभी हाल ही में यह बताया गया है कि आर्जीमोन तेल से पित्ताशय की थैली का कैंसर एवं पथरी की बीमारी हो सकती है, जिसके रोगी उत्तर भारत में सबसे ज्यादा हैं।

(चित्र-2) आर्जीमोन का पौधा और उसके बीज

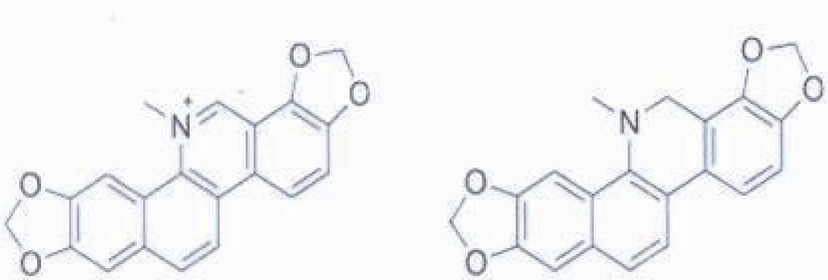

(चित्र-3) आर्जीमोन तेल के दो प्रमुख अलक्लायड सैंग्यूनरिन और डाइहाइड्रोसैंग्यूनरिन

सरसों के तेल में आर्जीमोन तेल की पहचान कर पाना हमेशा से एक चिंता का कारण रहा है और इसके लिए कई परीक्षणों का विकास किया गया है, जिनमें नाइट्रीक एसिड टेस्ट, पेपर क्रोमैटोग्राफी और टी.एल.सी. प्रमुख हैं। हाल ही में आई.आई.टी.आर. ने 100 पी.पी.एम. की संवेदनशीलता पर आर्जीमोन तेल का पता लगाने के लिए क्षेत्र स्तर पर एक परीक्षण किट का विकास किया है (चित्र-4)। तेल के एक हिस्से को टेस्ट ट्यूब में लेते हैं और एक अभिकर्मक मिश्रण (Reagent mixture) के साथ हिलाकर थोड़ी देर के लिए छोड़ देते हैं। निचले परत की एक बूँद को फिल्टर पेपर पर रखते हैं और एफ.डी.डी. किट से देखते हैं। नांरगी या बैंगनी फ्लारीसेंट स्पॉट आर्जीमोन तेल की उपस्थिति को दर्शाता है।

(चित्र-4) आई.आई.टी.आर. द्वारा विकसित एफ.डी.डी. किट

बटर यलो :-

सस्ते एवं कम पीले सरसों के तेल में पीली डाई, बटर यलो को मिला जाता है और सरसों के तेल में तीखापन लाने के लिए उसमें एलाइल आइसोथायोसाइनेट मिलाया जाता है। इस एजोडाई का खाद्य पदार्थों में प्रयोग पूरी दुनिया में प्रतिबंधित है, क्योंकि यह डी.एन.ए. अथवा प्रोटीन के साथ मिलकर जीनोटॉक्सिक एवं म्यूटाजेनिक प्रभाव पैदा करता है। यह यकृत में ट्यूमर और श्वसन नली में कैंसर पैदा कर सकता है। बटर यलो का पता लगाने के लिए आई.आई.टी.आर. ने एक सी.डी. स्ट्रिप विकसित की है (चित्र-5)। यह एक रसायनिक लेपिक पट्टी है जो खाद्य तेलों में बटर यलो का पता लगाता है। सी.डी. स्ट्रिप पर तेल की एक बूंद को डाला जाता है और यदि स्ट्रिप का रंग गुलाबी या लाल हो जाता है तो तेल में बटर यलो मिले रहने का संकेत होता है।

(चित्र-5 आई.आई.टी.आर. द्वारा विकसित सी.डी. स्ट्रिप)

ट्राइक्रेसाइल फास्फेट :-

ट्राइक्रेसाइल फास्फेट (टी.सी.पी.) एक औद्योगिक रसायन है जो कि हाइड्रालिक द्रव में और वार्निश में प्रयोग किया जाता है (चित्र-6)। टी.सी.पी. का प्रकोप यू.एस.ए., डर्बन और श्रीलंका जैसे कई देशों

में पाया गया है। 1988 मे रेपसीड मिलावटी टी.सी.पी. तेल के सेवन से कोलकाता में 600 लोग बीमार पड़े, जिनके दोनों हाथों में पक्षाघात के लक्षण दिखें। मरीजों में गैस बनने की शिकायत से लेकर निचले अंगों में अकड़न एवं कमजोरी पाई गई। इस अवधि के दौरान बेहाला (कोलकाता) क्षेत्र के कई रेपसीड तेल के नमूनों का विश्लेषण किया गया और उनमें कुछ टीसी.पी. के साथ दूषित पाए गए।

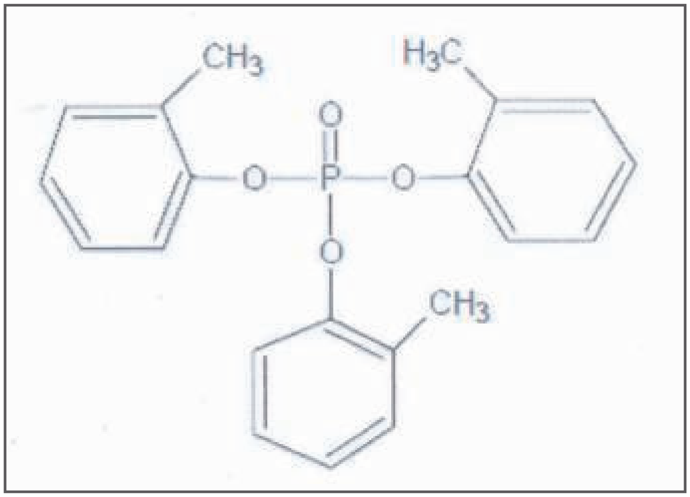

(चित्र-6) ट्राइक्रेसाइल फास्फेट

3. दाल में मिलावट

अक्सर खेसारी दाल (चित्र-7) को चने की दाल और उसके बेसन में मिला दिया जाता है। खेसारी दाल के नियमित सेवन से निचले अंगों में पक्षाघात की शिकायत हो जाती है। ये रोग इथियोपिया, बांग्लादेश, अफगानिस्तान और भारत में अधिक प्रचलित है। ये बीमारी खेसारी दाल में पाए जाने वाले एक असामान्य एमिनोएसिड, बीटा आक्जालिल एमिनो एलानीन (बी.आ.ए.ए.) के लिए है (चित्र-8)। खेसारी दाल के उत्पादन पर तीन राज्यों (पश्चिम बंगाल, बिहार और मध्य प्रदेश) को छोड़कर पूरे देश में प्रतिबंध लगा दिया गया है। वैज्ञानिक कम विष या विष विहीन किस्मों को तैयार करने में प्रयासरत है क्योंकि एक बार विष निकाल देने पर ये फली कीट प्रतिरोधी, काफी उच्च प्रोटीन, किफायती, स्वादिष्ट और कम सिंचाई वाली फली के रूप में विकसित हो सकती है।

(चित्र-7) खेसारी पौधा और उसकी दाल

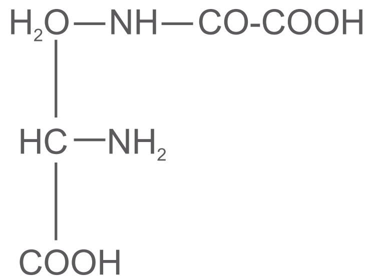

(चित्र-8) खेसारी दाल में पाये जाने वाला अमीनोएसिड बी.ओ.ए.ए.

अपने आप पनपने वाले तत्व

(1) माइकोटॉक्सिन

माइकोटॉक्सिन कवक द्वारा उत्पादित विषाक्त सेकेंडरी मेटाबोलाइट है जो कृषि उपज पर बढ़ती है और जानवर और मनुष्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। माइकोटॉक्सिन फसल उत्पादन के पूर्व और बाद के चरणों में उत्पन्न हो सकते हैं। भारत में उष्णकटिबंधीय ऋतु, बिना मौसम की बारिश, बाढ़, क्षतिग्रस्त फसल एवं संग्रहीत रखी हुई अनाज यह सभी मिलकर कवक

आक्रमण, प्रसार, संदूषण एवं माइकोटॉक्सिन विस्तार के लिए अनुकूल हैं। कुछ माइकोटॉक्सिन के नाम जो कृषि उपज में उत्पन्न होते है तालिका 3 में दी गई है। यह अनुमान लगाया गया है कि विश्व खाद्य फसलों में से एक चौथाई माइकोटॉक्सिन संदूषण के कारण जोखिम में हैं और ये माइकोटॉक्सिन कार्सीनोजेनीसिटी, टेराटोजेनीसिटी, नेफरोटॉक्सीसिटी एवं हेपैटोटॉक्सीसिटी के लिए जाने जाते हैं। भारतीय खाद्य अपमिश्रण अधिनियम (PFA) में कुल अफलाटॉक्सिन और ट्राइकोथीसीन के लिए सीमा निर्धारित है, परन्तु व्यक्तिगत अफलाटॉक्सिन जैसे बी-1, बी-2, एम-1 और विभिन्न अन्य माइकोटॉक्सिन के लिए कोई सीमा निर्धारित नहीं है। इसलिए तत्काल ही विभिन्न खाद्य वस्तुओं में इन माइकोटॉक्सिन के लिए सीमा निर्धारित होना अतिआवश्यक है।

1. तालिका - 3 : खाद्य पदार्थों में पाए जाने वाले विभिन्न माइकोटॉक्सिन एवं उनसे संक्रमित अनाजों के नाम

क्रमांक	माइकोटॉक्सिन	पैदा करने वाले कवक	संक्रमित अनाज
1	एफ्लाटॉक्सिन	एसपरजिलस	मकई, मूंगफली, सूखे मेवे, मसाले, चावल
2	सिट्रीनिन	पेनीसिलम एसपरजिलस	मक्का, चावल, गेंहूँ, जौ, आटा, जई, राई, मूंगफली
3	एर्गोटॉक्सिन	क्लाविसेप्स	गेंहूं, जौ, जई, राई, बाजरा, मक्का
4	फ्यूमोनीसिन बी.1	फ्यूजेरियम	मक्का, चावल
5	अकराटॉक्सिन ए.	पेनीसिलम	कॉफी, शराब, बियर, मसाले, कोको
6	पैटूलिन	पेनीसिलम	सेब, संतरा, नाशपाती, अंगूर, स्ट्रावेरी
7	ट्राइकोथीसिंस	फ्यूजेरियम	गेंहूँ, बाजरा, राई, जई, चावल, सोयाबीन, आलू, मूँगफली, आम
8	जियरालिनोन	फ्यूजेरियम	मक्का, मकई, ब्रेड, अखरोट

2. घातु :-

तेजी से औद्योगीकरण ने हमारे वातावरण को धातुओ से दूषित किया है। धातुएँ जैसे Fe, Cu, Cd, Zn, Mn, Co, Mo, Se, Cr, Pb, Hg तथा As, हवा, पानी, मिट्टी और खाद्य पदार्थों में अवशोषित होते हैं और भोजन के माध्यम से मानव शरीर में पहुॅचते हैं। धातुओं के लिए भारतीय खाद्य अपमिश्रण अधिनियम के अन्तर्गत स्वीकार्य स्तर की सीमा निर्धारित की गयी है। आमतौर पर ज्यादा मात्रा में सेवन करने से सभी धातु विषाक्त हो जाते हैं, इसलिए आवश्यक एवं विषाक्त धातुओं के बीच भेद करना कठिन है।

मनुष्य के शरीर में खाद्य पदार्थों द्वारा सबसे ज्यादा सीसा पहुॅचता है। अनाज, फल, सब्जियॉ आदि में विविध मात्रा में सीसा मौजूद है। चॉदी के वर्क में भी सीसा के अलावा कई हानिकारक धातु पाये जाते हैं। सीसा का अवशोषण बच्चों एवं शिशुओं में वयस्कों की अपेक्षा अधिक है। इसलिए गर्भवती महिलाएॅ एवं विकासशील भ्रूण ज्यादा भोजन के सेवन करने से सीसा अवशोषण के प्रति ज्यादा संवेदनशील है।

पानी में आर्सेनिक का होना एक वैश्विक चिंता का विषय है। बांग्लादेश एवं पश्चिम बंगाल में इस धातु की समस्या अधिक है, परंतु हाल ही में उत्तर प्रदेश के बलिया जिले में आर्सेनिक दूषित भूजल का मामला प्रकाश में आया है। क्रोमियम भी चमड़े के कारखाने के अपशिष्ट या क्रोमाइट अयस्क (ore) से परिपूर्ण मिट्टी के द्वारा खाद्य श्रृखंला में प्रवेश कर सकता है। क्रोमियम चीनी, दूध, सब्जियों जैसे विभिन्न खाद्य पदार्थो में पाया गया है। कुछ धातुई संदूषण के लिए अभी भी कोई मानक निर्धारित नहीं है। जैस कि चॉदी के वर्क के लिए कोई मानक नहीं है, सिवाण्य इसके कि वह 99.9 प्रतिशत शुद्ध हों।

(3) पॉलीऐरोमेटिक हाइड्रोकार्बन्स (पी.ए.एच.एस.):-

पी.ए.एच.एस. कई सारे दहन प्रक्रियाओं के द्वारा उत्पन्न होते हैं और कई व्यक्तिगत पी.एच.एस. मिलकर एक जटिल मिश्रण के रूप में वातावरण में मौजूद है। कोयला दहन प्रवाह, मोटर वाहन निकास,इस्तेमाल किया हूआ लुब्रीकेटिंग ऑयल एवं तम्बाकू के धुएॅ में भी पी.एच.एस. पाए जाते हैं। पी.ए.एच.एस. तेलों में तथा खाद्य पदार्थों के तलने से एवं भूनने से भी उत्पन्न होते हैं। पी.एच.एस. से मुख्यतः फेफड़ों का कैंसर होता है।

(4) कीटनाशक :-

फसल पैदावार को बढ़ाने के लिए कीटनाशकों का प्रयोग बड़े पैमाने पर हो रहा है और यह आधुनिक कृषि का एक अभिन्न अंग बन गया है। कीट के नियंत्रण के लिए फसलों पर कीटनाशकों के छिड़काव के कारण उनके अवशेष मिट्टी, पानी, हवा और फसल में पाए जाते हैं। कई कीटनाशक फल, सब्जियॉ, अनाज, दूध और डेयरी उत्पादों, अण्डे, मांस, मछली आदि में पाए गए हैं। भारतीय खाद्य अपमिश्रण अधिनियम में 121 कीटनाशकों की निर्धारित सीमा विभिन्न खाद्य वस्तुओं में तय की गई है। कीटनाशक के व्यापक प्रयोग के कारण वे सतह जल और भू-जल में पहुॅच जाते है और पीने के पानी में मिल जाते है। हॉलांकि कुछ जैविक कीटनाशक पर प्रतिबंध लगा दिया गया है परंतु यह हमारे वातावरण में अभी भी मौजूद हैं और मानव स्वास्थ्य के लिए खतरा बन सकते है।

उपसंहार -

भोजन में जानबूझकर मिलावट करना आमतौर पर आर्थिक लाभ कमाने के लिए किया जाता है। पर खाद्य संदूषण अपने आप होता है। भारत में 80 सरकारी खाद्य प्रयोगशालाएँ हैं, परन्तु सीमित संसाधनों और जनशक्ति में कमी होने के कारण उनके परीक्षण पूर्ण नहीं हो पाते हैं। नए खाद्य एडीटिव्स एवं संदूषण जैसे-पशु चिकित्सा दवा अवशेष, एक्रीलामाइड, ट्रांसफैटीएसिड तेजी से अपनी सीमाएँ खाद्य श्रृंखला में फैला रहे हैं पर उनके लिए अभी भी कोई सीमाएँ निर्धारित नहीं है। सरकारी खाद्य परीक्षण प्रयोगशालाओं को स्वयं को रोजमर्रा के परीक्षण पैरामीटरों से हटकर उन विषाक्त मिलावटों या संदूषणों की जॉच भी करनी चाहिए जिनका स्वास्थ्य के ऊपर विविध प्रभाव पड़ सकता है। इसी के साथ ही खाद्य उद्योगों को अच्छी विनिर्माण पद्धति (GMP) अपनानी चाहिए, जिससे मिलावट एवं संदूषण कमसे कम मात्रा में खाद्य उत्पादों में पहुॅच सके और हमारा जीवन स्वस्थ रहे। समय की मांग है कि बहुरसायन संदूषण का ऑकलन हो सके, क्योंकि एक ही उत्पाद में कई तरह के संदूषण या मिलावट हो सकते है जो कि विषाक्तता को बढ़ा सकते हैं। यह कुछ उपाय मनुष्य को सुरक्षित भोजन के बुनियादी आवश्यकता को पूरा करने में मदद कर सकते हैं।

पर्यावरणीय रसायन मध्यस्थ पुरुष प्रजनन विषाक्तता: ड्रासोफिला एक वैकल्पिक प्रतिरूप जीव

प्रज्ञा प्रकाश एवं डी. कार. चौधरी

भ्रूण विष-विज्ञान विभाग, सी.एस.आई.आर.-भारतीय विषविज्ञान अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

आधुनिक युग में असीमित औद्योगिकीकरण एवं अंधाधुंध नगरीकरण मानव जीवन के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रहे हैं। अनेक सर्वेक्षणों ने इस तथ्य की पुष्टि की है कि इस प्रक्रिया में हजारों विभिन्न प्रकार के रसायन पर्यावरण में उत्सर्जित होते हैं जो अनेकानेक प्रकार की विषाक्तता के लिए उत्तरदायी हैं। इन उत्सर्जित रसायनों का प्रभाव जैव-संचयन वं जैव-आवर्धन जैसी जैविक अभिक्रियाओं के द्वारा कई गुना तक बढ़ जाता है। इन जिम्मेदार रसायनों में विभिन्न धातुएँ, कीटनाशक एवं उनके चयापचय, प्लास्टिसाइजर, हेलोजेनेटेड एवं एरोमेटिक हाइड्रोकार्बन्स आदि प्रमुख रूप से सम्मिलित हैं। अनेक जीवों पर हुए अध्ययन से इस बात की जानकारी मिलती है कि ऐसे रसायनों का दुष्प्रभाव ही समाज में व्याप्त नपुंसकता के मुख्य कारकों में से एक है। सम्पूर्ण विश्व में हुए बहुव्यापक अध्ययनों से ये प्रमाणित हुआ है कि लगभग ७0 प्रतिशत नपुंसकता के मामलों में वीर्य की गुणवत्ता का घटना महतवपूर्ण भूमिका निभाता है जो प्रत्यक्षतः पुरुष प्रजनन विषाक्तता का ही परिणाम है। इन रसायनों के द्वारा वीर्य की गुणवत्तता का घटना प्रजनन सम्बन्धी हार्मोन्स को, शुक्राणु बनने की प्रक्रिया को एवं शुक्राणु के क्रिया को भी नकारात्मक तरीके से प्रभावित कर सकता है। इस विषय में पूर्व परीक्षणों से यह अवगत हुआ है कि ये रसायन असामान्य शुक्राणु सांद्रता, शुक्राणु गतिशीनलता के साथ-साथ हार्मोनल असंतुलन से भी जुड़े हुए हैं।

जैसा कि सर्वविदित है कि हमारे जीवन की उत्पत्ति की कुंजी प्रजनन है जिसमें पुरुष एवं महिला दोनों ही समान रूप से उत्तरदायी होते हैं। यदि वातावरण में पाये जाने वाले रासायनिक पदार्थ समाज के जीवों के प्रजनन की प्रक्रिया में बुरा प्रभाव डालते हैं तो ये सम्पूर्ण प्रजनन उत्पादन के घटने का एक मुख्य कारण है जिसमें पुरुष प्रजनन विषाक्तता महत्वपूर्ण है। इस तरह की प्रजनन विषाक्तता किसी भी प्राणी के प्रजनन गुण को प्रभावित करती है, जिसकी वजह से उस स्थान विशेष का जनसंख्या अनुपात तक प्रभावित हो सकता है।

पुरुष प्रजनन विषाक्तता के संदर्भ में वातावरण में उपस्थित कुछ रासायनिक पदार्थो का विश्लेषण एवं उनके प्रजनन पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों के बारे में जानकारी निम्नलिखित हैः

भारी धातुएं

अनेकों विभिन्न प्रकार की भारी धातुएं जैसे लेड, क्रोमियम, निकिल आदि पुरुष प्रजनन प्रणाली पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं, जिस कारण उनकी प्रजनन और प्रजनन उत्पादकता पर बुरा असर पड़ता है। विभिन्न प्रयोगशालाओं में हुए परीक्षणों से यह ज्ञात हुआ है कि ये धातुएं शुक्राणु आकारकी, एंजाइम एवं हार्मोन्स के संतुलन को बिगाड़ने और शुक्राणु संख्या को कम करने के लिए जिम्मेदार होते हैं।

विशेष रूप से लेड पिट्यूटरी ग्रंथि का भार और शुक्राणु जीवकता कम करने, शुक्राणु डीएनए की पैकेजिंग में हस्तक्षेप करने के साथ-साथ शुक्राणु गतिशीलता को घटाने के लिए भी जिम्मेदार माना गया है। अन्य भारी धातु जैसे क्रोमियम मुख्यतः Cr(VI), रक्त-वृषण अवरोध, शुक्राणु की मृत्यु वृषणघात एवं वृषण शरीर क्रिया विज्ञान में परिवर्तन के लिए जिम्मेदार मानी जाती है। इसके साथ ही साथ रक्त में इस धातु की मात्रा अधिक होने पर ये वीर्य के दूसरे महत्वपूर्ण लक्षणों पर भी बुरा प्रभाव डालते हैं।

कीटनाशक

कीटनाशक का प्रयोग वैसे तो कृषि की रक्षा हेतु कीटों के विनाश के लिए होता है परंतु इसका विषाक्त प्रभाव गैर-लक्षित जीवों पर भी देखने को मिलता है। इन कीटनाशकों में मुख्य रूप से ओर्गनोक्लोरीन, ओर्गनोफास्फेट, पाइरिथ्राइड्स आदि का उपयोग रसायन मध्यस्थ पुरुष प्रजनन के प्रतिकूल प्रभावों के लिए जिम्मेदार होता है जिसमें नवजातों की मृत्यु जन्मजात दोष आदि प्रमुख हैं।

इस संदर्भ में साइपरमेथरिन पाइरिथ्रोइड्स समूह का एक कीटनाशक अपना प्रतिकूल प्रभाव विभिन्न हार्मोन्स जैसे टेस्टोस्टेरोन, एफएसएच (FSH) एवं एलएच (LH) का स्तर कम करके डालता है। इसके अलावा यह शुक्राणु गतिशीलता को घटाने के साथ ही असामान्य शुक्राणु के उत्पादन में प्रमुख भूमिका निभाता है। साइपरमेथरिन के अलावा ओर्गनोफास्फेट कीटनाशक भी पुरुष प्रजनन के मापदंडो को बुरी तरीके से प्रभावित करता है। ओर्गनोफास्फेट कीटनाशक जैसे क्लोरापाइरिफास अनेकों शुक्राणु मापदंड़ो पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है जिसमें शुक्राणु आकारकी, गतिशीलता वं संख्या महत्वपूर्ण है। इसके साथ ही इस कीटनाशक का उपयोग करने पर सीरम टेस्टोस्टेरोन स्तर में कमी, एपिडिडाइमल एवं टेस्टीकुलर शुक्राणु संख्या में कमी के अलावा सेमिनीफेरस टुबुल्स में भी असामान्य परिवर्तन देखने को मिलते है।

प्रतिरूप जीव (model organism)

किसी भी पदार्थ से मानव जीवन पर होने वाले दुष्प्रभावों का अध्ययन के लिए हमें प्रतिरूप जीवों की आवश्यकता होती है जिसके चयन में बहुत सारे कारक अपनी भूमिका निभाते हैं। प्रजनन विषाक्तता के संदर्भ में स्तनधारी जीवों को उनकी मनुष्यों से समानता के आधार पर हमेशा से ही प्राथमिकता मिलती रही है। परंतु इन स्तनधारी जीवों की भी सीमाएं होती हैं जैसे (1) अनके अध्ययन के लिए बड़ी प्रयोगशालाओं एवं आवास सुविधओं की आवश्यकता होती है। (2) इनके वंशज कम होते हैं जिससे अध्ययन सीमित होता है। (3) इनका प्रजनन काल बहुत लंबी अवधि का होता है। (4) इनके अध्ययन के लिए नैतिक अनुमति की आवश्यकता होती है। इन्ही विभिन्न कारणों की वजह से ECVAM (European Centre for Validation of Alternate Methods) ने जैविक अनुसन्धानों एवं विषाक्तता परीक्षण में प्रयुक्त होने वाले जीवों की संख्या को कम करने पर बल दिया है। इस सन्दर्भ में विभिन्न वैकल्पिक प्रतिरूप जीवों जैसे जीनोपास, सी. एलेगेन्स, ड्रासोफिला आदि का प्रयोग विषाक्तता के अध्ययन में करने का सुझाव दिया गया है। इन प्रतिरूप जीवों के प्रयोग से हम कठिन से कठिन प्रश्नों का जवाब भी सरल जीवों में अध्ययन करके खोज सकते हैं।

ड्रासोफिला (फल मक्खी)

ड्रासोफिला एक डिप्टेरन गण का कीट है जो मानव की सबसे करीबी अकशेरुकीय प्रतिरूप जीव मानी जाती है। यह निम्नलिखित कारणों से अनुवांशिकीय एवं विकासातमक जीव विज्ञान का एक सीमित क्लासिकल प्रतिरूप जीव है:

(1) छोटे जीवन-चक्र का होना

(2) आसानी से संवर्धन होना

(3) विभिन्न प्रकार के मोलिक्युलर टूल्स की उपलब्धता

(4) विभिन्न प्रायोगिक जोड़-तोड़ द्वारा अध्ययन

किसी भी अध्ययन में प्रयुक्त होने वाले प्रतिरूप जीवों की उपयोगिता का आकलन उस अध्ययन के परिणामों का मानव जाति पर प्रयोज्यता से होता है। इस संदर्भ में ड्रासोफिला के सम्पूर्ण जीनोम के अनुक्रमण से इस तथ्य का पता चला है कि लगभग ६0 प्रतिशत मानव जींस के ओर्थॉलोग्स ड्रासोफिला में मौजूद हैं। इसके अलावा मनुष्य प्रजनन के लिए उत्तरदायी जींस भी ड्रासोफिला में अत्यधिक संरक्षित होते हैं। इन सभी के साथ-साथ ड्रासोफिला एवं स्तनधारियों की शुक्रजनन की प्रक्रिया में भी बहुत समानता है। इन्हीं विभिन्न कारणों की वजह से, प्रजनन विषाक्तता के अध्ययन के लिए ड्रासोफिला एक उत्कृष्ट इन-विवो प्रतिरूप जीव जाना जाता हे। विभिन्न अध्ययनों से भी यह प्रमाणित हो चुका है कि ड्रासोफिला एक प्रतिरूप जीव के रूप में किसी भी रसायन की प्रजनन विषाक्तता के प्रभावों को बताने में पूरी तरह सक्षम है।

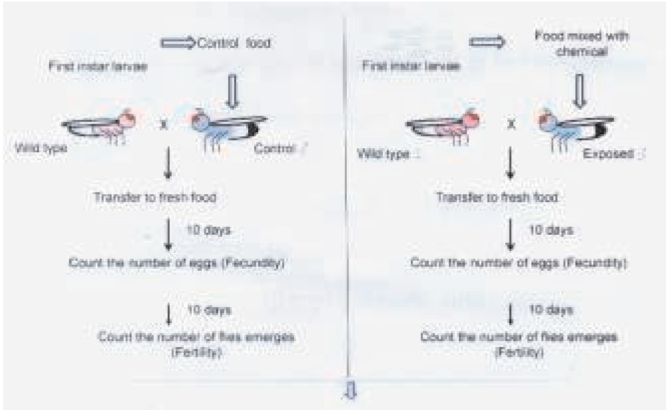

शुक्राणु शुक्रजनन एवं प्रजनन ऊतक पर रसायनों के दुष्प्रभाव का अध्ययन;

तिवारी एवं अन्य (2011) थेरिआजेनोलोजी से अपनाया

विगत कुछ वर्षों में रासायनिक पदार्थों का दुष्प्रभाव पुरुष प्रजनन गुणवत्ता की तेजी से ह्रास होने के प्रमुख कारणों में उभरकर सामने आया है। इस लिए इस लेख में कुछ रासायनिक पदार्थों एवं उनसे पुरुष प्रजनन पर होने वाले प्रतिकूल प्रभावों का उल्लेख किया गया है। इसके साथ ही एक वैकल्पिक प्रतिरूप जीव के रूप में ड्रासोफिला की उपयोगिता का प्रजनन विष-विज्ञान के क्षेत्र में भी वर्णन किया गया है।

नगरीकरण का पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव: मानव जाति के भविष्य पर एक कठिन संकट

सौरभ द्विवेदी, पुरुषोत्तम त्रिवेदी, डा. अनिल कुमार पांडे
पर्यावरण एवं निर्वहनीय विकास विभाग संस्थान, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी

ब्रह्माण्ड अनंत है और इसकी सीमा निर्धारित करना एक कल्पना मात्र ही कार्य है परन्तु खगोलशास्त्रियों का यह अनुमान है कि प्रत्येक आकाश गंगा में लगभग 100 बिलियन तारे है। हमारी आकाशगंगा दुग्धमेखला है। दुग्धमेखला में एक सौर परिवार है। सौर परिवार का राजा सूर्य को माना जाता है। सौर परिवार में 8 ग्रह हैं जो निरंतर अपनी एक निश्चित कक्षा में सूर्य की परिक्रमा करते रहते है। इसमें अनेक उपग्रह और बौने ग्रह भी पाए जाते है। सौर परिवार के आठ ग्रहों में एकमात्र ग्रह पृथ्वी है जिस पर जीवन है इसके अलावा अन्य किसी ग्रह पर जीवन नहीं है। पृथ्वी पर जीवन होने का मुख्य कारण जल की उपस्थिति ही है। पृथ्वी पर 7 महाद्वीप हैं और उन पर अलग-अलग कई देश है। वर्तमान में प्रत्येक देश विकसित होना चाहता है। कुछ देश विकसित है तथा शेष विकास की होड़ में लगे हुए है। इस परिप्रेक्ष्य में विभिन्न प्रकार की मानवजनित गतिविधियां पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव डाल रही है।

विकास की होड़ में प्राकृतिक संसाधनो का अतिशोषण किया जा रहा है और पर्यावरण को नजरंदाज किया जा रहा हे जिसका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से मानव जाति की आगामी पीढ़ियों पर नकारात्मक प्रतिफल होगा। विकास के परिप्रेक्ष्य में एक कदम नगरीकरण भी है। नगरीकरण एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें मनुष्य अपनी सामाजिक, दैनिक, पारिवारिक जरूरतों को पूरी करने की कोशिश करता है। इस व्यवस्था से विभिन्न प्रकार के शिक्षा संस्थान, अनुसन्धान केन्द्र, व्यावसायिक क्षेत्र, उद्योग-धंधे तथा हमारी दैनिक आवश्यकता की वस्तुएँ एक जगह उपलब्ध होती है।

नगरीकरण के लाभ

नगरों के विकास से शिक्षा संस्थानों की स्थापना जिसके परिणामस्वरुप शिक्षा ग्रहण करने के लिए बाहर नही जाना पड़ता, रोजमर्रा की सारी दैनिक वस्तुयें जैसे फल, सब्जियां, औषधियां, और खाने-पीने की वस्तुएं इत्यादि एक ही स्थान पर उपलब्ध हो जाती है। नगरीकरण से प्रौद्योगिकी का भी विकास संभव हो सका जिससे मानव जाति के जीवन यापन को सहज बनाने का प्रयास किया जाता है। प्रौद्योगिकी वह धरातल प्रदान करता है जिस पर वर्तमान पीढ़ी चलकर विकास के पथ पर अग्रसर हो सके। आज विज्ञान आगे है क्योंकि प्रौद्योगिकी का विकास निरंतर हो रहा है। नगरों में विभिन्न प्रकार के उद्योग धंधे भी उपलब्ध होते है जो वर्तमान युवा पीढ़ी को रोजगार के अवसर प्रदान करते है साथ ही साथ हमारे दैनिक उपयोग की वस्तुएं जैसे वस्त्र, औषधियां, उर्वरक, विभिन्न खाद्य पदार्थ इत्यादि भी प्रदान करके उस राष्ट्र के विकास में एक और माध्यम प्रदान करते है। नगरों में दूरसंचार का विकास हुआ और दूरसंचार के विभिन्न साधन उपलब्ध कराकर मनुष्य को एक दूसरे से जोड़ा गया जिससे वो अपने संसाधनों का आदान-प्रदान करके समाज और देश के विकास में अपना योगदान दे सकें।

नगरीकरण के दुष्प्रभाव

नगर बसाने के लिए सर्वप्रथम वनों तथा पेड़-पौधों को काट कर साफ किया जा रहा है जिससे हमारी जैव-विविधता का विनाश हो रहा है। वनों की कटाई से पर्यावरण पर अनेक दुष्प्रभाव पड़ रहे हैं। पेड़-पौधे अपनी जड़ों में मिट्टी को जकड कर मृदा-अपरदन का रोकते हैं। वृक्ष पर्यावरण की शुद्धता में भी अहम योगदान देते हैं। पर्यावरण से दूषित CO_2 ग्रहण करके प्रकाश-संश्लेषण की प्रक्रिया द्वारा अपना भोजन बनाते हैं तथा वापस पर्यावरण को शुद्ध O_2 प्रदान करते हैं जो हमारे लिए प्राणदायिनी वायु प्रदान करते है। वर्तमान वातावरण में 20.94% O_2 तथा 0.03% CO_2 उपस्थित है। औद्योगिक गतिविधियों से कार्बन के उत्सर्जन में निरंतर वृद्धि हो रही है। विकसित तथा औद्यौगिक क्षेत्र में संपन्न देश CO_2 के उत्सर्जन में अहम भूमिका निभाते है जो CO_2 की मात्रा में वृद्धि करते हैं। यह गैस हरित गृह प्रभाव को बढ़ावा देती है। 2006 के वैश्विक आंकड़ों के अनुसार CO_2 उत्सर्जन के परिप्रेक्ष्य में पांच देश इस प्रकार है -

1. चीन (21.5%)
2. अमेरिका (20.2%)
3. संयुक्त राष्ट्र (13.8%)
4. रूस (5.5%)
5. भारत (5.3%)

जल चक्र में भी वृक्षों का महत्वपूर्ण योगदान होता है जो वर्षा कराने में सहायक होते हैं। वृक्षों के विनाश से मृदा अपरदन, अनियमित वर्षा, दूषित वातावरण तथा वृक्षों से प्राप्त होने वाली वस्तुएँ जैसे फल, फूल, औषधियां और सूखी लकड़ी की कमी इत्यादि का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ रहा है। विकासशील देशो में गरीब ग्रामीणों की एक बड़ी संख्या भोजन पकाने और घर गर्म रखने के लिए आज भी लकड़ी पर बहुत अधिक निर्भर है। इमारती और जलावनी लकड़ी की आवश्यकता पूरी करने के लिए हम उसी अनुपात में या उसी गति से पेड़ लगाने में असमर्थ रहे हैं। इसे महसूस करके पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने 1988ई0 में राष्ट्रीय वननीति बनाई जिसमें वनों के संयुक्त प्रबंधन को महत्व दिया गया। इसमें वनों के निर्वहनीय प्रबंध के लिए स्थानीय समुदाय और वन विभाग मिलकर काम करते है।

नगर उर्जा की बहुत बड़ी मात्रा का उपयोग करते है। प्राचीन काल में नगरीय जीवन इतना विकसित नही था जिससे आज की अपेक्षा कम उर्जा की आवश्यकता थी। परंपरागत आवासों में तापमान के कृत्रिम नियंत्रण की बहुत कम आवश्यकता होती थी क्योंकि उनमें प्रयुक्त ईंट और लकड़ी जैसी सामग्रियां अत्याधुनिक भवनों के शीशे, कंक्रीट और इस्पात की अपेक्षा कहीं बेहतर ढंग से तापमान को संतुलित करती थी। आज तापमान के कृत्रिम नियंत्रण के लिए वाहनों में, मकानों में और विभिन्न वस्तुओं जैसे प्रशीतक इत्यादि में विभिन्न गैसों का उपयोग किया जा रहा है जो हमारी प्रकृति के साथ खिलवाड़ कर रही है, जैसे-क्लोरो-फ्लोरो-कार्बन। ये गैसें ए.सी. तथा रेफ्रीजरेटर में उपयोग में लाई जाती हैं जो वातावरण के समतापमंडल में पहुँचकर प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न करती है। समताप मंडल में ओजोन (O_3) गैस पाई जाती है जो लगभग 3 मि.मी. मोटी होती है। यह सूर्य से विकसित हानिकारक पराबैंगनी किरणों को अवशोषित कर लेती हैं और उनके हानिकारक प्रभाव से पृथ्वी पर

पाये जाने वाले सजीवों की रक्षा करती हैं। क्लोरो-फ्लोरो-कार्बन गैस में क्लोरीन के अणु होते हैं जो ओजोन (O_3) अणु से क्रिया करके उसे नष्ट कर देते है। ऐसा अनुमान है कि एक क्लोरीन का अणु एक लाख ओजोन अणुओं को नष्ट करता है। फलस्वरूप ओजोन परत में छिद्र हो रहा है और हानिकारक पराबैगनी किरणें धरती पर पहुँच कर विभिन्न प्रकार के रोग उतपन्न कर रही है। 1950 के दशक तक नगरों के अधिकतर रसोईघर लकड़ी या चारकोल का प्रयोग करते थे। तब यह सम्भव और व्यावहारिक था क्योंकि मकानों में चिमनियां होती थीं और रसोई घर बाकी मकान से अलग होते थे। इनकी जगह जब आधुनिक फ्लैटों ने ले ली तो धुआँ एक समस्या बन गया। फिर 1970 के दशक तक नगरीय भारत के अधिकांश भागों में विद्युत उर्जा और उसके बाद धीरे धीरे प्राकृतिक गैसों ने इसकी जगह ले ली। प्राकृतिक गैसो का उपयोग इन दिनों बहुतायत मात्रा में हो रहा है जिसका अभी तक वातावरण पर हानिकारक प्रभाव परिलक्षित नहीं हुआ है। नगरों में एक विशाल जनसंख्या एक छोटे से क्षेत्र में निवास करती है और विस्तृत रूप से विभिन्न प्रकार के कार्यों को अंजाम देती है फलःस्वरूप वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण और मृदा प्रदूषण इत्यादि की उत्पत्ति होती है। प्रदूषण किसी भी पदार्थ की पर्यावरण के किसी माध्यम में वह मात्रा है जो कि मनुष्य तथा जीव-जन्तुओं पर नकारात्मक प्रभाव उत्पन्न करने में सक्षम होती है। नगरीकरण से पर्यावरण के विभिन्न माध्यम जैसे जल, हवा तथा भूमि आदि दूषित हो रहे हैं। नगरीकरण के कारण यातायात में वाहनों का प्रचुर मात्रा में उपयोग हो रहा है। ये वाहन अत्याधुनिक डीजल तथा पेट्रोल इंजन से संचालित होते है जो डीजल तथा पेट्रोल ईधन का उपयोग करते है। ईधन के दहन से CO_2, CO, तथा SO x गैसें निकलती है। ईधन के अपूर्ण दहन से CO निकलती है जो मनुष्य के रक्त में उपस्थित हीमोग्लोबिन से क्रिया करके कार्बोक्सी-हीमोग्लोबिन का निर्माण करता है और हीमोग्लोबिन की O_2 वहन क्षमता को कम कर देता है। CO की हीमोग्लोबिन से क्रिया करने की क्षमता O_2 से बहुत अधिक (लगभग 200 गुना) होती है। SO x वातावरण में जल के साथ क्रिया करके सल्फ्यूरिक अम्ल का निर्माण करता है और अम्ल वर्षा में योगदान देता है। यह अम्ल वर्षा पर्यावरण में उपस्थित जल तथा मृदा की गुणवत्ता पर बुरा प्रभाव डालता है। सीसा भी एक प्रमुख वायु प्रदूषक है जो काफी हद तक निगरानी से बाहर है और पेट्रोल इंजन वाले वाहनों से मुक्त होता है। महानगरों के आस पास की हवा में इसके भारी स्तर पाए गए है। पेट्रोल ईधन में टेट्राएथिल लेड उपयोग में लाया जाता था जो आक्टेन-बूस्टर का काम करता था परन्तु लेड बहुत ज्यादा हानिकारक प्रभाव उत्पन्न करता है इसी कारण अब सीसारहित पेट्रोल उपयोग में लाया जाता है जिसमें टेट्राएथिल लेड के स्थान पर टेट्राएथिल ब्रोमाइड मिलाया जाता है। इसी कारण इसे सीसारहित कहते है। इसके उपयोग से पर्यावरण को लेड के नकारात्मक प्रभाव से बचाया जा सकता है।

वाहनों से, जनित्र से तथा निर्माण कार्यों से भारी मात्रा में कणपदार्थ उत्सर्जित होते हैं जैसे आग के धुंए, एस्बेस्टस, धूल के कण, उद्योगों से निकली राख, चिमनियों से निकली राख इत्यादि जो वायु को प्रदूषित करके विभिन्न प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न करती है। इनके नियंत्रण के लिए सायक्लोंन-सेपेरेटर, फैब्रिक-फिल्टर, एलेक्ट्रोस्ताटिक-प्रेसिपिटेटर, वेंत स्क्रबर, इत्यादि उपकरणों का प्रयोग किया जाता है।

नगरों से विभिन्न अवयव अंतर्विष्ट अपशिष्ट तथा कूड़ा-कचड़ा निकलता है जो पर्यावरण में बिना किसी उपचार के फेंक दिया जाता है और वो प्रकृति को प्रभावित करता है। अपशिष्ट मुख्यतः दो प्रकार के होते है-

(1) जो सूक्ष्मजीवों के द्वारा विघटित हो सके, जैसे खाद्य अपशिष्ट आदि

(2) जो सूक्ष्मजीवों के द्वारा विघटित न हो सके, जैसे पॉलीथीन के थैले

प्रथम प्रकार के अपशिष्ट को बायोडिग्रेडेबल तथा द्वितीय प्रकार के अपशिष्ट को गैर बायोडिग्रेडेबल कहते है। द्वितीय प्रकार के अपशिष्ट पर्यावरण में नष्ट नही होते और अनेको वर्षों तक पड़े रहते है। वर्तमान समय में अपशिष्ट पदार्थों का उपयुक्त निस्तारण न होने के कारण सभी पदार्थों जैसे - कपड़े, प्लास्टिक, चमड़े के सामान, कागज, मनुष्यों एवं पशुओं का मलोत्सर्जन इत्यादि को एक ही सीवर में प्रवाहित किया जाता है जो जल की गुणवत्ता के लिए नुकसानदायक होता है। नगरों से निकले हुए अपशिष्ट पदार्थों को जलनिकास शोधन प्रणाली से काफी हद तक शोधन करने का प्रयास किया जाता है। कार्बनिक अपशिष्ट जल में पहुंचकर जल की जैविक आक्सीजन मांग को बढ़ा देते है। इस प्रणाली में अपशिष्ट की किस्म के आधार पर मुख्यतः तीन स्तरों में शोधन होता है-

i. भौतिक शोधन
ii. रासायनिक शोधन
iii. जैविक शोधन

1. भौतिक शोधन : इस स्तर में बड़े टुकड़ों जैसे पोलीथीन, लकडी के टुकडे, कपडे, ईंट, पत्थर, इत्यादि

चित्र 1: जल निकास शोधन प्रणाली

को अलग किया जाता है। तैलीय अपशिष्ट को भी इसी स्तर में अलग किया जाता है।

2. रासायनिक शोधन : इस विधि में क्लोरिनेशन, फ्लेक्कुलेशन तथा कोआगुलेशन विधि के द्वारा जल का शोधन किया जाता है। इस स्तर में विभिन्न रासायनिक पदार्थों का इस्तेमाल करके शोधन किया जाता है।

3. जैविक शोधन : इस स्तर में जैविक आक्सीजन मांग को एक निश्चित अनुपात में लाने का प्रयास किया जाता है। जैविक आक्सीजन मांग को mg/l में माँपते है। जैविक आक्सीजन माँग की एक निश्चित मात्रा होती है जिससे ज्यादा होने पर तथा कम होने पर दोनों ही परिस्थियाँ में वह जल की गुणवत्ता के लिए नुकसानदायक होती है। इस प्रक्रिया में आक्सीकरण तालाब, संक्रिया पंक प्रक्रिया, टपकते छन्ने इत्यादि का उपयोग किया जाता हे। इस स्तर में विभिन्न सूक्ष्मप्राणी पंक के रूप में नीचे बैठ जाते है, फिर इस पंक को एक अवयावीय डाइजेस्टर में विघटित किया जाता है जहाँ पंक में उपस्थित जीवाणु धीरे धीरे कार्बनिक पदार्थ को CO_2, CH_4 और H_2S तथा अन्य स्थाई वस्तुओं में बदल देते है। डाईजेस्टर में बनने वाली गैस में लगभग 60% मीथेन होती है जो मूल्यवान ईधन है। यह पंक जो पम्प

करके फैलाकर सुखाया जाता है जिससे उत्तम जैविक खाद का उत्पादन होता है, किसानों को प्रदान किया जाता है। इस उर्वरक का उपयोग रासायनिक उर्वरक से अधिक निर्वहनीय है।

उपरोक्त विश्लेषण से हम इस तथ्य पर पहुंचते हैं कि प्राकृतिक संसाधनों का अत्यंत शोषण हो रहा है जो हमारे भविष्य की आने वाली पीढ़ियों के लिए अहितकर है। जिस तरह से वर्तमान मानव जाति विकास की इस होड में प्रकृति तथा पर्यावरण को नजरअंदाज कर रहा है उसका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से नकारात्मक असर वर्तमान जीवो के स्वास्थ्य पर परिलक्षित हो रहा है। नगरों के विकास तथा नगरीकरण में प्राकृतिक संसाधनों का अतिशोषण तथा प्रकृति की सुन्दरता के साथ खिलवाड़ मानव जाति को झेलना पड़ रहा है और आने वाली पीढ़ियों को भी झेलना पड़ेगा। अतएव हमें जागरुक होने की अति आवश्यकता है। शिक्षित वर्ग से लेकर अशिक्षित वर्ग तक इस क्रिया में लिप्त है और प्रकृति को नजरअंदाज कर रहा है। तत्कालीन प्रभाव में जलस्तर का घटना, मृदा-अपरदन, वायु-प्रदूषण, समुद्र के जल-स्तर में वृद्धि तथा ध्वनि-प्रदुषण इत्यादि परिलक्षित हो रहे है। नगरीकरण, विलासितापूर्ण जीवनशैली तथा औद्योगीकरण से ओजोन क्षरण, हरित-गृह प्रभाव, ध्रुवीय बर्फ का पिघलना, पर्यावरण के ताप में वृद्धि इत्यादि पर्यावरणीय कुप्रभाव सामने आये है। अतः हमें जागृत होना होगा और प्राकृतिक संसाधनों जैसे पेट्रोलियम, कोयला और जल इत्यादि का अतिशोषण रोककर निर्वाहनीय तरीके से उपयोग करना होगा तथा राष्ट्र के युवाओं को वैकल्पिक उर्जा तकनीकी विकसित करने के लिए प्रोत्साहित करना होगा और युवाओं को भी अपने राष्ट्र की प्राकृतिक सम्पदा का संरक्षण करते हुए अपने देश के विकास के बारे में सोचना होगा।

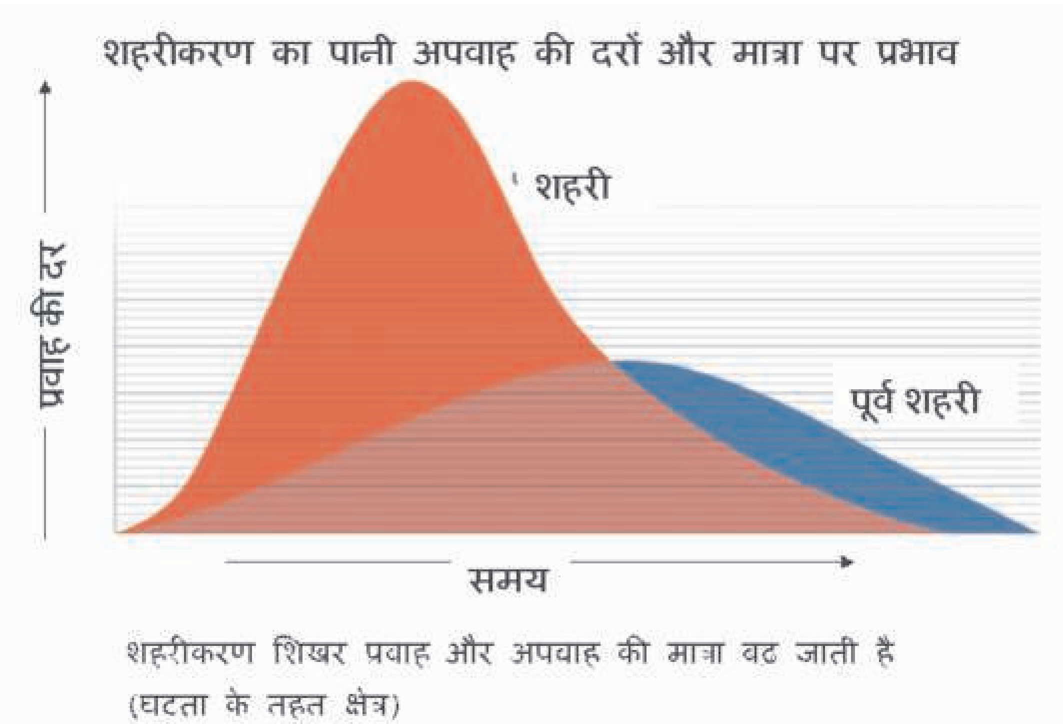

चित्र 2 शहरीकरण का पानी अपवाह की दरों और मात्रा पर प्रभाव

जलवायु परिवर्तन एवं आपदा : समस्या व समाधान

ऋचा आर्या, पुरुषोत्तम त्रिवेदी, मोहम्मद यूनुस, अनिल कुमार गुप्ता
बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर विश्व विद्यालय, लखनऊ

जलवायु परिवर्तन किसी एक प्रदेश अथवा एक देश में नहीं हुआ है बल्कि यह समस्त विश्व में हुए आर्थिक परिवर्तन से सम्बन्धित है। आज वर्तमान समय में हमारी हरी-भरी पृथ्वी की स्थिति एकदम से बदल गयी है। बढ़ते हुए आर्थिक विकास के कारण ग्रीन हाउस गैसों का दिनों-दिन उत्सर्जन के कारण जलवायु परिवर्तन हो रहा है। नगरीकरण, औद्योगीकरण, यातायात के साधनों का विकास, नायलोन पदार्थो का अधिक उत्पादन, वन विनाश, कृषि का आधुनिकरण, जैव ईंधनो के अधिक दोहन आदि विभिन्न कारकों तथा माध्यमों से पृथ्वी के वायुमण्डल के ऊपरी परत में कार्बन डाई आक्साइड, मीथेन, नाइट्रोजन के आक्साइड, सी. एफ.सी., सीसा व हेलोजेन्स आदि गैसो की निरन्तर वृद्धि हो रही है जिसके कारण पृथ्वी के चारो तरफ से घिरे वायुमण्डल के तापमान की तीव्र गति से वृद्धि हो रही है वायुमण्डल में परिवर्तन विश्व के लिए एक चुनौती के रूप में परिलक्षित हो रहा है। जलवायु परिवर्तन में पूर्णतः मानवीय हस्तक्षेप ही कारक नही है बल्कि प्राकृतिक परिवर्तन भी इस परिवर्तन के उत्तरदायी हैं। यदि पृथ्वी की जलवायु का इतिहास देखें तो स्पष्ट होता है कि पृथ्वी के निर्माण से लेकर वर्तमान समय तक जलवायु कभी स्थिर नहीं रही है। प्रीकैम्ब्रियन काल में पृथ्वी की जलवायु गर्म थी। ओलिगोकाल में अधिकांश भागो पर गर्म व शीतोष्ण कटिबन्धीय जलवायु का विस्तार था। प्लीस्टोसीन में भू पटल पर हिम की चादर स्थिति थी। आधुनिक युग अथवा होमासीन युग में जलवायु गर्म होने के कारण ग्लेशियर पिघलने के फलस्वरूप समुद्र जल के स्तर में वृद्धि हुई है।

जलवायु परिवर्तन एक निरन्तर घटने वाली प्रक्रिया है जिसे रोकना सम्भव नहीं है। जलवायु परिवर्तन में ग्लोबल वार्मिंग व ग्लोबल कूलिंग दोनों के महत्वपूर्ण प्रभाव परिलक्षित होते है। जलवायु पविर्तन के कारण प्राकृतिक आपदाओं पर भी सीधा प्रभाव पड़ता है। ग्लोबल वार्मिंग या वैश्विक तापवृद्धि के कारण तीव्र गति से वाष्पीकरण हो रहा है जिससे झीलें, छोटी नदियां, तालाब विलुप्त होने की कगार पर हैं। मिट्ठी की नमी कम होती जा रही है जिसके कारण सूखे की समस्या में वृद्धि हो रही है विश्व के ग्लेशियर भी तीव्रता से पिघल रहे है। जिससे समुद्री जल के स्तर में वृद्धि हो रही है। फलस्वरूप समुद्रतटीय प्रदेशों को चक्रवात का सामना करना पड़ता है। 1961-1990 के मध्य औसतन विश्व के ग्लेशियरों की अधिकांश बर्फ पिघलने से समुद्र का जल स्तर प्रतिवर्ष 0.35 मिमी.-0.4 मिमी. तक बढ़ गया है। 2001-04 में यह वृद्धि 0.8 मिमी. से 1 मिमी. तक आंकी गयी है। विश्व की जलवायु परिवर्तन का भारत की कृषि प्रवत्तियों पर पड़ने वाला कुप्रभाव चिन्ताजनक है क्योंकि भारत की अर्थव्यवस्था कृषि पर ही आधारित है और लगभग 65 प्रतिशत जनसंख्या को रोजगार प्राप्त होता है। भारत में 60 प्रतिशत कृषि क्षेत्र अभी भी मानसून वर्षा पर निर्भर करता है। केवल 40 प्रतिशत क्षेत्र में सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो पायी है। तापमान में वृद्धि के कारण उत्तर भारत में कृषि उत्पाद पर अधिक प्रभाव पड़ता है क्योंकि यह वह क्षेत्र है जहाँ भारत को सबसे अधिक उत्पादन प्राप्त होता है।

जलवायु में परिवर्तनशीलता अधिक होने के कारण इसका प्रभाव प्रकृति में आपदाओं को बढ़ावा देता है और मनुष्य द्वारा प्रकृति पर किये गये प्रयोगों की गणना भी यह बताती है कि आधुनिक युग में आपदाओं की संख्या बढ़ रही है।

यद्यपि हम आपदाओं के विषय में बात करे तो भारत के भू-भाग का लगभग 59 प्रतिशत भूकम्प की सम्भावना वाला क्षेत्र है। देश के 68 प्रतिशत भाग में कभी हल्का तो कभी भीषण सूखा पड़ता है। 38 प्रतिशत क्षेत्र में 750-1125 मिमी. वर्षा होती है तो 33 प्रतिशत में 750 मिमी. से कम वर्षा होती है। देश के बाढ़ सम्भावित 4 करोड हेक्टेयर भू-भाग से लगभग 7½ हेक्टेयर प्रतिवर्ष आंशिक या भीषण बाढ़ से प्रभावित रहता है। भारत के कुछ राज्य जैसे असम, बिहार, उत्तर प्रदेश, गुजरात और पश्चिम बंगाल प्रतिवर्ष भीषण बाढ़ की चपेट में आते है। ग्लेशियर से निकलने वाली नदियां प्रतिवर्ष अपने उफान पर होती है (एन.आई.डी.एम. न्यू दिल्ली)। देश के 7.500 किमी. लम्बे तटवर्ती क्षेत्र का लगभग 71 प्रतिशत (5300 किमी.) भाग चक्रवात एवं भूकम्प के प्रति संवेदनशील है। यह सभी आपदाएं प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से जलवायु परिवर्तन से सम्बन्धित है।

तालिका - 1 : भारत में प्रकृतिक आपदाएं (1980-2010)

घटनाओं की संख्या	431
मृत लोगों की संख्या	1,43,039
औसत मृत प्रतिवर्ष	4,614
प्रभावित लोगों की संख्या	15,21,726,127
औसत प्रभावित प्रतिवर्ष	4,90,87,940
आर्थिक क्षति (अमरीकी डालर)	4,80,63,830
प्रतिवर्ष आर्थिक क्षति	15,50,446

स्त्रोत - प्रिवेन्शनवेब

तालिका-1 में 1980-2010 के दौरान भारत में घटित आपदाओं और उनसे होने वाली हानि का विवरण दिया गया है। तालिका में यह दर्शाने का प्रयास किया गया है कि भारत को किस प्रकार आपदाओं द्वारा क्षति उठानी पड़ती है। प्राकृतिक आपदाएं सीधे आर्थिक उपलब्धियों को नुकसान पहुंचाती है।

तालिका - 2 : आपदा जोखिम आंकड़े (1967-2006)

आपदा का प्रकार	संख्या / प्रतिवर्ष	वितरण प्रतिशत	हताहत सं. प्रतिवर्ष	औसत प्रभावित जनसंख्या / प्रतिवर्ष (दस लाख में)
भूकम्प	0.88	11	2,672	0
बाढ़	4.05	52	1,308	18
सूखा	0.20	3	8	24
भूस्खलन	0.88	11	104	0
चक्रवात	1.83	23	1,219	2

स्त्रोत - फायनेसिंग डिजास्टर मैनेजमेंट, एन.आई.डी.एम. 2009

तालिका 2 यह दर्शाती है कि 1967 से 2006 के दौरान भारत में जो आपदाएं आयी उनमें से 52 प्रतिशत बाढ़ के कारण, 23 प्रतिशत चक्रवात के कारण और 11.11 प्रतिशत भूकम्प व भूस्खलन के कारण हुई। परन्तु सबसे अधिक लोग भूकम्प से प्रभावित हुए।

प्राकृतिक आपदाओं के बढ़ने का मुख्य कारण जलवायु पविर्तन, मानव का प्रकृति के प्रति सामन्जस्य न होना व जनसंख्या वृद्धि है। आपदाएं सबसे ज्यादा क्षति वहां पहुचाती है जहां उनके घटित होने की सम्भावना न के बराबर हो। जैसे राजस्थान के मरूस्थल में अगर बाढ़ आ जाये तो लोगों की बाढ़ से निपटने की तैयारी शून्य होगी जिसके कारण क्षति अधिक होगी तथा लम्बे समय तक अपना असर दिखायेगी। राजस्थान में आयी भीषण बाढ़ जलवायु परिवर्तन को दर्शाती है। जलवायु परिवर्तन के कारण मौसम में परिवर्तन सम्भावित है। मानसून की अनिश्चितता सबसे ज्यादा प्राकृतिक आपदाओं को बढ़ावा देती है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है। प्राकृतिक आपदाएं जैसे सूखा, बाढ़ सबसे अधिक कृषि को प्रभावित करती है जिससे किसानों को अधिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। साथ ही साथ यह भारत की अर्थव्यवस्था पर गहरा प्रभाव डालती है। आपदाओं को जड़ से खत्म करना असम्भव है, परन्तु आपदा प्रबन्धन के साथ हम आपदाओं की तीव्रता को कम कर सकते है। विश्व के कई देशों ने आपदा प्रबन्धन के लिए त्रिस्तरीय तैयारी करने पर बल दिया जा रहा है। आपदा के पूर्व आपदा के दौरान तथा आपदा के बाद इस तैयारी को आपदा जोखिम न्यूनीकरण कहते है। इस आरम्भिक प्रयास के कारण आपदा के समय होने वाले जान-माल व सम्पत्तियों के नुकसान को कम किया जा सकता है। भारत में वर्ष 2005 में आपदा प्रबन्धन अधिनियम (डिजास्टर मैनेजमेंट एक्ट) पारित हुआ है जिससे आपदा प्रबन्धन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया है। उक्त परिवर्तनों के साथ आपदाओं व जलवायु परिवर्तन के विषय में जन-चेतना विकसित करना एक बेहतर उपाय के रूप में प्रयोग में लाना कारगर सबित होगा।

हीट-शॉक प्रोटीन्स आण्विक संरक्षक ("फल मक्खी से विष-विज्ञान तक" एक वृत्तांत)

आशुतोष पाण्डेय एवं डी. कार. चौधरी

भ्रूण विष-विज्ञान विभाग, सी.एस.आई.आर.-भारतीय विषविज्ञान अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

जीव शरीर की कोशिकाओं में कई प्रकार की प्रोटीनों का संश्लेषण एवम् विघटन होता रहता है। नवनिर्मित लघु प्रोटीनों तथा प्रतिकूल दशा में विघटित हो रही प्रोटीनों के सुसयोंजन हेतु कोशिकाओं में एक विशेष प्रकार की प्रोटीनों का संश्लेषण होता रहता है। इनके विशिष्अ कार्यो के आधार पर इन प्रोटीनों को आविक संक्षक (मोलेक्युलर चेपरोन्स) कहा जाता है। ये प्रोटीन शरीर की लगभग सभी प्रकार की जैव-कार्यिकी में सहायक होती है।

सर्वप्रथम इन प्रोटीनों की खोज फल मक्खी (ड्रोसोफिल मेलेनोगस्टर) में हुई थी। सन् 1962 में एफ रिटोसा ने पाया कि उच्च ताप से अनावरित (एक्स्पोज्ड) हुई ड्रोसोफिला के लार ग्रंथियों के पॉलीटीन गुणसूत्रों में कुछ विशेष प्रकार की पफ़ जैसी संरचनाएँ बनती है।

तत्पश्चात अध्ययन से विदित हुआ कि ये संरचनाएँ उच्च ताप से अनावरित होने की दशा में कुछ विशेष प्रकार कि प्रोआीनों के सृजन हेतु बनती है। इन सृजित प्रोटिनों को ही हीट शॉक प्रोटीन कहते हैं। इन प्रोटीन्स का प्रकटनकरने वाले जीनों को हीट शॉक जींस कहते है।

अध्ययनों से पता चला कि उच्च ताप के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार कि तनाव (स्ट्रेस) दशाओं में भी इन से पता चला कि उच्च ताप के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार की तनाव (स्ट्रेस) दशाओं में भी इन

प्रोटिन्स का संश्लेषण होता है। अतः इन प्रोटीन्स को स्ट्रेस प्रोटीन्स कहा जाता है।

सजीवों में जैव-कार्यिकी में होने वाली अनियमितताओं की दशा को स्ट्रेस या तनाव से परिभाषित किया जाता है। सर्वप्रथम स्ट्रेस/तनाव शब्द का प्रयोग शरीर-कार्यिकी वेज्ञानिक हेन्स शीले ने किया था।

शीले के अनुसार तनाव/स्ट्रेस की दशा में

सभी जीव-जन्तु एक समान प्रकार की प्रतिक्रिया देते हैं। संयुकत रूप से ये सभी प्रतिकिक्रयाएँ जीव शरीर को तनाव/स्ट्रेस दशा से विमुक्त करने में सहायक होती है।

तनाव/स्ट्रेस दशा लघु या चिर-कालिक हो सकती है। इनके अंतर्गत बीमारी/क्षति जैसी अवस्थाएँ भी आती हैं जो कि विविध प्रकार के कारकों जैसे पर्यावरणीय प्रदूषक, जीवाणु, विषाणु, अनियमित ताप दशाओं का परिणाम होती हैं।

जीव, रसायन, औषधि-विज्ञान की वह शाख्खा जिसमें पर्यावरणीय प्रदूषक/रसायनों के प्रतिकूल प्रभावों का अध्ययन किया जाता है विष-विज्ञान कहलाती है। विष-विज्ञान के अंतर्गत विभिन्न प्रकार के पर्यावरणीय रसायनों के प्रतिकूल प्रभावों का मूल्यांकन (रिस्क असेसमेंट) किया जाता है। पर्यावरणीय रसायनों के अनावरण के पश्चात होने वाली व्याधियों के निपटान हेतु उनके अनावरण का पूर्व-अवलोकन/मूल्यांकन आवश्यक होता है। विष-विज्ञान के अंतर्गत उन संकेतको (मार्कर) की भी परीक्षण व पहचान की जाती है जिनसे प्रदूषकों तथा उनसे होने वाली व्याधियों का अनुमान लगाया जा सके। ऐसे संकेतको (मार्करों) को जैव-संकेतक या बायो-मार्कर कहा जाता है। इनकी मुख्य विशेषता इनकी संवेदनशीलता होती है, जिसके निरीक्षण से भावी प्रतिकूल प्रभावों से पूर्व अवगत हुआ जा सकता है।

हीट शॉक प्रोटीन्स का विष-विज्ञान में बायो-मार्कर के रूप में महत्वपूर्ा स्थान है। यद्यपि हीट शॉक प्राटीन्स की खोज एवम् विस्तारित अध्ययन ड्रोसोफिला में हुआ पर इनकी उपस्थिति ड्रोसोफिला के अतिरिक्त अन्य समूह के जीवों (प्रोकेरियोट्स से यूकेरियोट्स) में भी हो चुकी है।

सभी कोटि के जीवों में उपस्थिति एवं तनाव/स्ट्रेस के विरुद्ध संरक्षित प्रतिक्रिया, हीट शॉक प्रोटीनों को विष-विज्ञान में विशेष स्थान देती है।

हीट शॉक प्रतिक्रिया : विभिन्न प्रकार की तनाव दशाओं या रसायनों से अनावरित होने पर जैव कोशिकाओं में मुक्त मूलक (फ्री-रेडिकल) सृजित होने लगते हैं। इनमें क्रिया-शील ऑक्सीजन समूह (रिएक्टिव ऑक्सीजन स्पेसीज, आर.ओ.एस.), नाइट्रोजन समूह (आर.एन.एस.) आदि मुख्य मूलक हैं। इन मूलकों के सृजन से कोशिका की रेड़ोक्स दशा असंतुलित हो जाती है। यह अवस्था आक्सीडेटिव स्ट्रेस कहलाती है। विघटित होने वाली लघु प्रोटीन श्रृंखलाओं के संग्रहण से प्रोटीनलों का विघटन होने लगता है। विघटित होने वाली लघु प्रोटीन श्रृंखलाओं के संग्रहण से उद्दीपित होकर हीट शॉक प्रोटीन्स का प्रकटन होता है और ये टूटी-फूटी लघु प्रोटीनों तथा अन्य नवजात प्रोटीनों को सुसयोजित करने का कार्य करती है। इस प्रकार तनाव/स्ट्रेस दशा में कोशिका

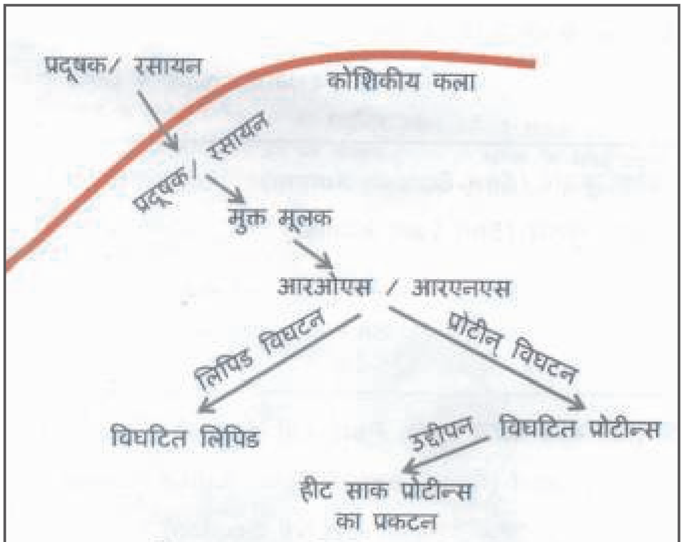

हीट साक प्रतिक्रिया की क्रियाविधि

में बचाव/संरक्षण का कार्य करती हैं।

हीट शॉक को उनके आण्विक-भारनुसार पाँच मुख्य कुलों में वर्गीकृत किया गया हैं -

1. एचएसपी 100 कुल
2. एचएसपी 90 कुल
3. एचएसपी 70 कुल
4. एचएसपी 60 कुल
5. लधु एचएसपी कुल

हीट शॉक प्रोटीन्स का विष-विज्ञान में अनुप्रयोगः विभिन्न अध्ययनों द्वारा प्रमाणित हो चुका है कि ड्रोसाफिला तथा अन्य प्रयोगशाला-जीव मॉडलों में रसायनिक तथा तापीय स्ट्रेस/तनाव दशा में हीट शॉक प्रोटिन्स के प्रकटन का स्तर बढ़ जाता है। अन्य सभी हीट शॉक प्रोटीन्स में एच.एस.पी. 70 सबसे संवेदनशील तथा सभी समूहों के जीवों में अति संरक्षित है। कई अध्ययनों में तनाव/स्ट्रेस दशा तथा रसायनों के विरूद्ध एच.एस.पी. 70 के बढ़े हुए प्रकटन स्तर को

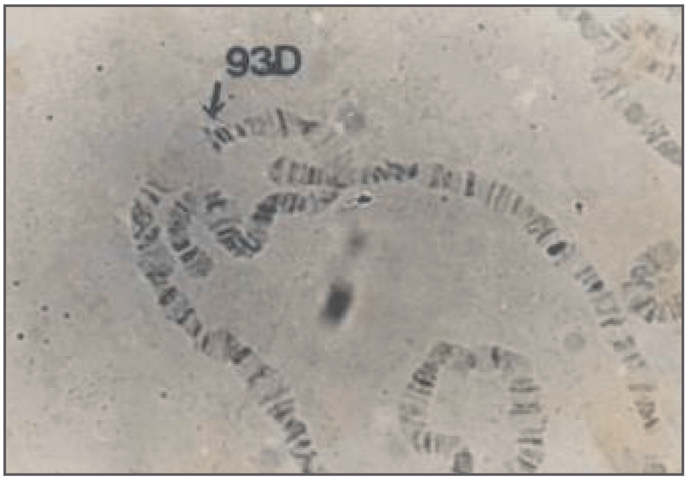

ड्रोसोफिला लार्वा की लार ग्रंथि के पोलिटीन गुण सूत्र में पफ

दर्शाया गया है। वैकल्पिक प्रयोगशाला जन्तु के रूप में ड्रोसोफिला भी एक मुख्य चयनित जन्तु मॉडल है। मनुष्यों एवम् उच्च कोटि के जन्तुओं से जीनोम समानता (>70%) इसको विशिष्ट बनाती है। जेनेटिक अध्ययनों में इसकी प्राथमिकता तथा नैतिक मूल्यांकनों से स्वतंत्रता इसे विष-विज्ञान में भी उपयुक्त मॉडल के रूप में स्थापित करती है।

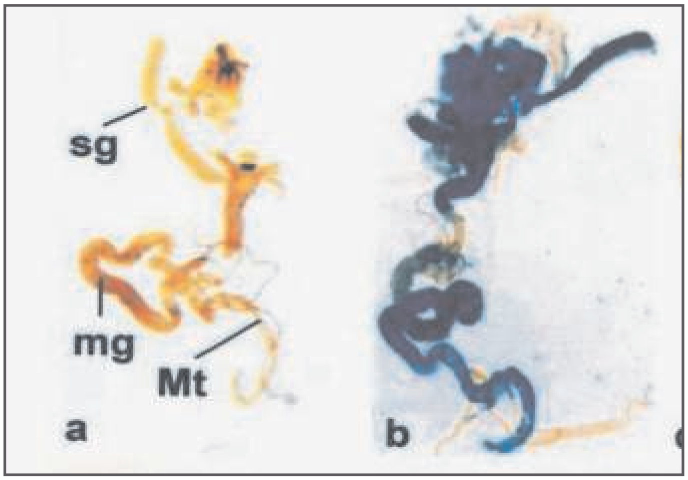

ड्रोसोफिला, ट्रांसजनित बीजी 9 लार्वा में एक्स सीटू अभिरंजन द्वारा एच एस पी 70 के प्रकटन का प्रदर्शन

विष-विज्ञान में हीट शॉक प्रोटीन्स की सीमाएंः अतिसंवेदन शीलता के बावजूद, कुछ अध्ययनों से प्रमाणित हो चुका है कि एचएसपी 70 सभी प्रकार के प्रदूषकों के विरुद्ध उद्दीपित नही होता है। डी पोमेराई (1996) के अनुसार एक प्रकार के एचएसपी का प्रकाटन स्तर विविध प्रकार के प्रदूषको/रसायनों के विरुद्ध प्रतिकूलता का संतुलित संकेत नही दे सकता है। जलीय जन्तु (मछली) पर अध्ययन के आधार पर वेब एवं गेब्नोन (2009) ने बताया कि केवल एचएसपी के प्रकटन स्तर का मूल्यांकन जलीय जन्तु के स्वास्थ दुष्प्रभावों को पूर्ण रूप से नही दर्शा सकता है।

सौंदर्य प्रसाधनों का मानव स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव

अंकित वर्मा, मोहन चंद पन्त* एवं रतन सिंह राय

प्रकाश जीवविज्ञान विभाग, सी.एस.आई.आर.-भारतीय विषविज्ञान अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

*डॉ. राम मनोहर लोहिया आर्युविज्ञान संस्थान, लखनऊ

''सौदर्य प्रसाधन, (Cosmetics) शब्द की उत्पत्ति ग्रीक भाषा के (kosmetike tekhne) शब्द से हुई है जिसका अर्थ है पोशाक और आभूषण की तकनीक''

''सौंदर्य प्रसाधन वह सामग्री है, जो मानव शरीर की संरचना या कार्यों को प्रभावित किए बिना शरीर के आकर्षण को निखारता है।'' इनमे त्वचा की नमी बनाये रखने वाले पदार्थ (क्रीम), इत्र, ओठ डंडी (लिपिस्टिक), नाखून रोगन, आँखों के लिए विभिन्न प्रकार के रंग युक्त काजल बाल रंगनें के प्रसाधन और मुखीय श्रृंगार आदि सौंदर्य उत्पादों में आते है। प्रसाधन सामग्री का उपयोग मुख्यता श्रृंगार (सजने-सवँरनें) के रूप में किया जाता है। ये मुख्यता रासायनिक यौगिकों का मिश्रण होता है जिसे कुछ प्राकृतिक स्त्रोतों से प्राप्त किया जाता है तथा कई यौगिको को कृत्रिम तरीकों से तैयार किया जाता है।

वर्तमान युग में इन पदार्थों का उपयोग काफी बढ़ गया है। शहरी क्षेत्रों के साथ-साथ ग्रामीण क्षेत्रों के लोग इसका व्यापक उपयोग कर रहे है। हमारे आस-पास नाना प्रकार के उद्योग स्थापित हो चुके हैं, जो सौंदर्य सामग्रियों का निर्माण कर रही है जिसको बाजार से लेकर हम अपनी सुन्दरता को निखारने तथा श्रृंगार करने में इतने मशरूफ हो जाते हैं कि इसके दुष्प्रभावों को हम नजर अंदाज कर देते हैं। लेकिन क्या आप जानते है कि सौंदर्य प्रसाधनों में कई ऐसे कृत्रिम रसायन तत्व मिले रहते है, जो हमारे स्वास्थ्य को धीरे-धीरे हानि पहुंचाते है।

सौंदर्य प्रसाधनों के उत्पादों में एक विस्तृत श्रृंखला शामिल है। इनमें से कुछ त्वचा या आँखों में जलन या एलर्जी के रूप में स्वास्थ्य समस्याएं पैदा कर सकते हैं। सामान्यतः ये समस्यायें अल्पकालिक होते हैं। इन उत्पादों का उपयोग बंद कर इनसे बच सकते है। लेकिन यदि इस्तेमाल करते रहें तो ये अल्पकालिक समस्याएं दीर्घकालिक हो सकती है जिसके फलस्वरुप गंभीर बीमारी होने का खतरा हो जाता है।

दैनिक उपयोग में आने वाली प्रसाधन सामग्री

वर्तमान में उपलब्ध शोध आँकड़ों और साक्ष्यों के आधार पर यह विचार व्यक्त किया गया है कि सामान्य

रूप से उपयोग में लाये जाने वाले सौंदर्य प्रसाधनों में कुछ ऐसे तत्व मौजूद होते है, जो कैंसर (कर्करोग) जैसे बीमारियों को जन्म देते है। आइये जाने कुछ रसायन यौगिकों के बारे में जिनका उपयोग प्रसाधन सामग्री बनाने में किया जाता है और जो हमारे स्वास्थ्य के लिये हानिकारक होतें है।

सोडियम लारिल सल्फेट (SLS) और अमानियम लारिल सल्फैट (ALS):-

यह कृत्रिम रसायन पदार्थ डिटर्जैंट और झाग निर्माण के लिए शैम्पू में प्रयोग किया जाता हे। सोडियम लारिल सल्फेट और अमोनियम लारिल सल्फेट आँखों में जलन, त्वचा पर चकत्ते व बालों के झड़ने का कारण बनता है। यह आसानी से शरीर में अवशोषित हो जाता है और त्वचा, मस्तिष्क, हृदय तथा फेफड़ों में दीर्घकालिक स्वास्थ्य समस्या उत्पन्न करता हैं।

पराबेन परिरक्षक (Paraben Preservatives) :-

इस रसायन का प्रयोग व्यापक रूप से सौन्दर्य प्रसाधनों को संरक्षित करने के लिए किया जाता है। इसका प्रयोग उत्पादों में सूक्ष्मजीवों के वृद्धि को रोकने तथा उत्पादों को अधिक समय तक सुरक्षित रखने के लिए किया जाता है यह रसायन बेहद जहरीला होने के लिए जाना जाता है। त्वचा पर चकत्ते और एलर्जी उत्पन्न करता है। ब्रिटेन में एक वैज्ञानिक अध्ययन में पराबेन के उपयोग और महिलाओं के स्तन कैंसर की बढ़ती दर के बीच एक मजबूत कड़ी पायी जिसमें शोधकर्ताओं ने स्तन ट्यूमर परीक्षण के 90 प्रतिशत में इस रसायन की उच्च सांद्रता पायी।

वेसलीन (पट्रोलियम):-

खनिज तेल, वेसलीन यह प्रायः पेट्रोलियम (कच्चा तेल) से निकाला जाता है। इसका उपयोग सामान्यतः चेहरे के क्रीम त्वचा, शरीर क्रीम वा लोशन आदि के बनाने में होता है। बच्चों के मालिश तेल में खनिज तेल ज्यादा मात्रा में होता है। जब इस प्रकार के सौन्दर्य उत्पादों का उपयोग त्वचा को सूर्य की किरणों की क्षति से बचाने के लिए किया जाता है तब यह धीरे-धीरे त्वचा में अवशोषित हो जाता है जिसमें यह प्राकृतिक नमीशोषक तंत्र की क्रियाविधि में हस्तक्षेप करने लगता है जिसके दुष्प्रभाव से त्वचा शुष्क होने लगती है।

आइसोप्रोपाइल एल्कोहल :-

यह त्वचा के देखभाल उत्पादों में एक विलायक के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसके प्रभाव से त्वचा में जलन होती है। और त्वचा के प्रोटीन से अभिक्रिया करता है, जिससे त्वचा पर झुर्रियाँ पड़ जाती हैं और त्वचा समय पूर्व उम्र बढ़ने (aging) का कारण भी होता है।

प्रोपायलिन ग्लाइकाल (Propylene Glycol) :-

यह एक प्राकृतिक ग्लिसराल होता है लेकिन वर्तमान में इसका निर्माण कृत्रिम पेट्रोकेमिकल के रूप में हो रहा है। यह कई सौन्दर्य क्रीमो में मिला होता है तथा यह नमीधारक का कार्य करता है। इसके अलावा इसका उपयोग लिपिस्टिक में बहुत होता है।

स्ट्रीरलकोनियम क्लोराइड :-

इस रसायन का प्रयोग बाल-कंडीशनर, शैम्पू तथा क्रीमों में किया जाता है। यह सौन्दर्य उत्पादों को चिकना या हल्का बनाता है। इस रसायन को प्रारम्भ में

कपड़ो में चिकनाहट लाने के लिए पॉलिश की तरह इस्तेमाल किया जाता था, तथा इसका विकास कपड़ा उद्योग द्वारा किया गया था। परन्तु वर्तमान में यह सस्ता और आसानी से उपलब्ध होने के कारण सौन्दर्य प्रसाधन उद्योगों मे भी व्यापक रूप से हो रहा है। इसके दुष्प्रभाव से बालों का असमय सफेद होना, रूसी आदि होता है।

टाल्क (Talc) :-

इसका इस्तेमाल सौन्दर्य प्रसाधनों के पाउडर में किया जाता है। जैसे चेहरे का पाउडर तथा शरीर के पाउडर में किया जाता है। इसको टाल्कम पाउडर भी कहते है। इसमें अभ्रक भी मिला होता है जो एक ज्ञात कैंसर कारक है। यह अस्थमा, फेफड़ों व डिम्बग्रंथि के कैंसर का प्रमुख कारण हो सकता है। अतः इस प्रकार के पाउडर के इस्तेमाल से बचना चाहिए।

फामेल्डिहाइड :-

कभी-कभी कुछ सौन्दर्य प्रसाधनों में फार्मोल्डिहाइड के यौगिक जैसे डाईजोलाहिडायल यूरिया, इमीडाजोडइल यूरिया, सोडियम हाड्राक्सीमेथाइल ग्लाइसीनेट का उपयोग संरक्षक के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। यह एक प्रकार का ज्ञात कैंसरकारक पदार्थ है। यह श्वास से सम्बन्धित बीमारियों को भी बढ़ाता है। जब यह क्रीम या साबुन में होता है, फामेल्डिहाइड त्वचा में अवशोषित हो जाती है और सिरदर्द एलर्जी जैसी प्रतिक्रियाओं को बढ़ावा देता है।

कृत्रिम रंग :-

सौन्दर्य प्रसाधनों में कृत्रिम रंगों का प्रयोग बहुत व्यापक रूप से हो रहा है। ये रासायनिक रंग एक तरफ तो सुन्दरता को बढ़ाते हैं, वहीं दूसरी स्वास्थ्य को हानि भी पहुँचाते है। इनके कुछ निम्नलिखित हैं :-

पैराफिनाइलडाईएमीन (PPD) :-

इसका उपयोग गाढ़ा रंग बनाने में किया जाता है। इसके प्रभाव से एलर्जी अभिक्रिया लालिमा पड़ना, त्वचा का सफेद होना तथा सिरदर्द भी होता है। कभी-कभी कुछ सौन्दर्य प्रसाधनों में हाइड्रोजन परॉक्साइड मिला होता है जो PPD से क्रिया कर कैंसरकारक बनाता है और कई तरह के कैंसर को जन्म देता है।

लेड एसीटेटः-

इसका भी प्रयोग कृत्रिम रंग में किया जाता है, जिसका मस्तिष्क पर प्रभाव पड़ता है तथा तंत्रिका तंत्र एवं संवेदांगों को हानि पहुंचती है। इसके अलावा रक्त स्कन्दन को भी प्रभावित करता है।

रिर्सोसीनाल :-

इस रसायन का प्रयोग सौन्दर्य प्रसाधनों में कृत्रिम रंग बनाने में किया जाता है। यह हमारी प्रतिरक्षा प्रणाली को प्रभावित करता है, इसके यौगिक जैसे परसल्फेट विषालु होता है तथा यदि यह श्वास द्वारा अधिक मात्रा में अन्दर है तो श्वास रोगों को बढ़ावा मिलता है।

कृत्रिम सुगंधित पदार्थ :-

प्रायः यह देखा गया है कि सौन्दर्य सामग्रियों में सुगंधों का इस्तेमाल बहुत होता है। हर कोई तरह-तरह के सुगंध चाहता है जिससे उसके व्यक्तित्व के

साथ-साथ सुन्दरता भी निखरे। लगभग 80 प्रतिशत सुगंध उत्पाद कृत्रिम रूप से तैयार रसायन होते हैं जो तारपीन, टालूईन, बेन्जीन सरसोल व फिनॉल आदि के यौगिक होते हैं। ये सभी कृत्रिम वाष्पशील सभी कार्बनिक रसायन होते हैं। वर्तमान में सौन्दर्य उत्पादों में दो सौ से ज्यादा घटक रसायनों का प्रयोग कृत्रिम सुंगन्ध बनाने में किया जाता है। ये हमारे स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव डालते हैं जिससे सिरदर्द, खाँसी, कफ व त्वचा के अनेक रोगों को बढ़ाते हैं।

इन विषाक्त पदार्थों से बचने के लिए सौन्दर्य सामग्रियों के लेबल को देखकर उनमें मिले हुए तत्वों को पहचान कर तथा उसके द्वारा त्वचा व स्वास्थ्य पर प्रभावों को भी जानकर बच सकते हैं। जहाँ यथा संभव हमें 100 प्रतिशत प्राकृतिक सौन्दर्य उत्पादों का उपयोग करना चाहिए।

घरों में आंतरिक वायु गुणवत्ता का महत्व

अल्ताफ हुसैन खान

प्रिन्सिपल वैज्ञानिक, पर्यावरण अनुवीक्षण विभाग, सी.एस.आई.आर.-भारतीय विषविज्ञान अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

एक सुन्दर, सुविधाजनक एवं स्वस्थ्य वातावरण युक्त घर हमारी मूलभूत आवश्यकता है। कहा जाता है कि हमें घर में ही सबसे अधिक संतोष एवं आराम मिलता है। अतः एक आरामदायक, हवादार, समस्त सुविधओं से युक्त घर हर एक का सपना होता है। घर को बनाने हेतु आवश्यक स्थान, उसमें प्रयुक्त होने वाली सामग्री, अन्य सुविधाओं के आकार प्रकार इत्यादि

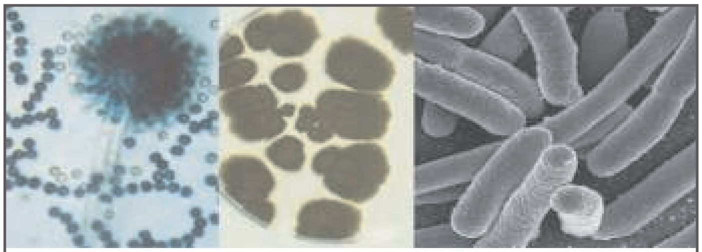

b- dkykb cDVhfj;k DykMkLikfj;e vkLiftyl
vkrfjd ok;e ik; tku okyl l{e thoh

में समय के साथ बहुत परिवर्तन हुआ है। पूर्व में जहां घर चारों ओर से खुले होते थे, आंगन होता था, पर्याप्त मात्रा में प्राकृतिक प्रकाश तथा शुद्ध वायु का प्रवाह होता था वहीं अब स्थिति एकदम भिन्न है। भूमि के अभाव में अब छोटी से छोटी जगह में घर बनाये जा रहे है। शहरी क्षेत्रों में सकरी सडकों के दोनों ओर कतारों में बने घर एक सामान्य दृश्य हो गया है। इन घरों में केवल सामने की ओर से ही खिड़की एवं दरवाजे होते हैं। सुरक्षा की दृष्टि से तथा अन्य कारणों से भी घरों में कम खुली जगह छोड़ी जा रही है। खिड़कियां इत्यादि लगी होने पर भी उन्हें अधिकतर बन्द ही रखा जाता है। घर की बनावट के साथ ही घर के अन्दर रखें हुए सामान तथा इसमें होने वाले कार्य-कलाप भी घर के आन्तरिक वायु गुणवत्ता पर प्रभाव डालते हैं। उदाहरण के लिए दीवार अथवा फर्नीचर पर लगा पेन्ट कार्बनिक तत्वों का उत्सर्जन करता है, रसोईघर से गैस के जलने तथा भोजन सामग्री के तलने और बनाते समय कई प्रकार के तत्व वायु में आ जाते हैं। साथ ही तापमान और आद्रता भी समय और मौसम के साथ बदलती है। आंतरिक दीवारों की सतह पर नमी होने पर यह विभिन्न प्रकार के सूक्ष्म जीवों जैसे बैक्टीरिया एवं फन्गस इत्यादि के प्रसार में सहायक होती है। यह सूक्ष्म जीव भी आंतरिक वायु गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव डालते हैं। बाहर से आने वाली तथा घर के अन्दर उत्पन्न धूल भी घर में जगह जगह जमीं हुई देखी जा सकती है।

अतः हम यह कह सकते है घर में मूलभूत सुख सुविधओं जैसे फर्नीचर फिटिंग्स एवं उपयोगी उपकरणों पर बहुत सारा धन खर्च करने के बाद भी हम यह नहीं जानते हैं कि हमारा घर स्वास्थ्य संबंधी आवश्यकताओं पर खरा उतरता है या नहीं। क्या घर के प्रत्येक कमरे तथा कोने में शुद्ध वायु का प्रवाह है या नहीं। हम यह जानते हैं कि घर की आंतरिक वायुगुणवत्ता का सीधा प्रभाव घर में रहने वालों के स्वास्थ्य पर पड़ता है। घर में उचित वेन्टीलेशन का अभाव, सस्ते पेन्ट का उपयोग, धूल की उपस्थिति, अनुचित एवं अनावश्यक कारपेटिंग, रसोईघर के धुंए का अपर्याप्त निस्तारण तथा घर के दीवारों तथा अंधेरे स्थानों पर आद्रता के होने से घर की आंतरिक वायु गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। घरों की आन्तरिक वायु गुणवत्ता में आज से 10-15 वर्ष पहले की तुलना में बहुत अधिक परिवर्तन देखा गया है। आज

घरों के अन्दर धूल, औद्योगिक धुंए, पेट्रोल फ्यूम, बैक्टीरिया, वायरस तथा अन्य एलर्जी कारकों का सान्द्रण बढ़ रहा है। कभी-कभी आन्तरिक वायु में बाहर की वायु की तुलना में इन प्रदूषकों का स्तर 5 से 6 गुना तक अधिक पाया गया है। श्वसन द्वारा धूल के सूक्ष्म कण, बैक्टीरिया वायरस, सिगरेट का धुंआ हमारे फेफड़ों में जाकर स्वास्थ्य समस्याएं उत्पन्न करता है। आइये अब हम देखें कि हम कैसे अपने घर की वायु गुणवत्ता को सुधार सकते हैं, अरुचिकर गंध से बचा सकते हैं और इसे शुद्धता और स्वास्थ्य की दृष्टि से स्वर्ग बना सकते हैं।

आजकल बाहरी वातावरण में हो रह ध्वनि प्रदूषण से बचने के लिए तथा ऊर्जा संरक्षण को ध्यान में रखते हुए घरों की खिड़कियां अक्सर पूरी तरह सील करके बन्द रखी जाती हैं। परिणामस्वरूप बाहर की शुद्ध एवं ताजी हवा के प्रवेश हेतु कोई स्थान खुला नहीं रह जाता। अतः घरों में शुद्ध हवा के प्रवेश तथा अशुद्ध हवा के निर्गत हेतु एक वेन्टीलेशन व्यवथा सुनिश्चित की जानी चाहिए। यह व्यवस्था घर के आकार, ढांचे में हवा के लिए उपलब्ध खुला स्थान, मौसम और घर के सदस्यों की संख्या को ध्यान में रखकर की जा सकती है। उचित वेन्टीलेशन सिस्टम द्वारा आन्तरिक वायु में प्रदूषकों का स्तर बढ़ने नहीं पाता तथा वायु गुणवत्ता स्वास्थ्य की दृष्टि से उचित स्तर पर बनी रहती है।

आन्तरिक वायु गुणवत्ता को प्रभावित करने वाले कारकों में से एक प्रमुख कारक घर में किया गया पेन्ट व वार्निश तथा कुछ कार्बनिक साल्वेंट हैं जो कि वायु में वालेटाइल आर्गेनिक कम्पाउन्ड (व्ही ओ सी) के रूप में पाए जाते हैं। अतः व्ही ओ सी रहित पेन्ट का उपयोग कर इस समस्या से प्रभावी रूप से निबटा जा सकता हे। पहले जब घरों में पेन्ट होता था तब घर के सदस्यों का घर में रहना कठिन हो जाता था। अधिकतर परम्परागत पेन्टों में व्ही ओ सी अधिक मात्रा में होता है और यही इस प्रकार की दुर्गन्ध के लिए उत्तरदायी होता है। व्ही ओ सी जहां एक ओर वायु गुणवत्ता को प्रभावित करता है वही यह स्वास्थ्य पर भी विपरीत प्रभाव डालता है। व्ही ओ सी का अधिक उत्सर्जन पेन्ट करते समय तथा इसे दीवारों से खुरचते समय देखा गया है। अतः घरों में पेन्टिंग के लिए इको फ्रेन्डली (पर्यावरण मित्र) पेन्ट का उपयोग लाभकारी होगा । जहां एक ओर यह पेन्ट चमकीली तथा मजबूत सतह देते हैं वहीं स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव नही डालते। इस प्रकार के पेन्ट के उपयोग करने पर घर के सदस्यों में सरदर्द, उल्टी, श्वांस संबंधी परेशानी, सीने में जकड़न तथा आंख, नाक और गले में जलन आदि की शिकायतें कम देखी गई है।

कपडों, कारपेट, पर्दे तथा अन्य घरेलू उत्पादों को बनाते समय विभिन्न प्रकार के रसायनों का प्रयोग होता है तथा कुछ रसायन उसके संरक्षण हेतु भी पैंकिग के समय लगाए जाते है। जब हम इस प्रकार के नए सामान घर में लाते हैं तो यह रसायन घर के वातावरण में फैल जाते हैं। दुकान से ड्राइक्लीन कराकर लाए गए कपड़ों के साथ भी कुछ रसायन घर में आ जाते है। व्ही ओ सी तथा कुछ अन्य प्रदूषको के स्तर को कम करने में पौधों के योगदान पर शोध कार्य किए गए हैं। गमले में लगे पौधे सल्फर तथा नाइट्रोजन के आक्साइड, व्ही ओ सी तथा धूल कणों को सोखने का कार्य करते हैं। यह आद्रता तथा तापमान पर भी सकारात्मक प्रभाव डालते है। पौधे, व्ही ओ सी रसायन जो कि कार्बनिक यौगिकों का मिश्रण होते है शोषित कर लेते हैं तथा उनके रासायनिक रूप को परिवर्तित कर भोजन के रूप में उनका उपयोग करते हैं। एक शोध से प्राप्त

जानकारी के अनुसार छोटे-छोटे 2 या 3 गमलों में लगे पौधे 100 वर्ग फुट क्षेत्र की श्वसन योग्य वायु को शुद्ध रख सकते हैं। इससे दुगुनी मात्रा में गमले लगाकर स्वस्थ्य वातावरण सुनिश्चित किया जा सकता है।

घर की आन्तरिक वायु गुणवत्ता को प्रभावित करने वाला एक अन्य मुख्य प्रदूषक घर में उड़ने वाली सूक्ष्म तथा अति सूक्ष्म धूल है जो कि हमें आखों से सामान्यतः दिखाई नहीं देती। यह धूल घर के बाहर से हवा के साथ तथा हमारे कपडो, जूतों, थैली तथा अन्य सामान के साथ भीतर आती है। इसके अतिरिक्त घर के अन्दर होने वाले कार्यों से भी धूल उत्पन्न होती है तथा घर की आन्तरिक वायु में फैल जाती है। घर की नियमित साफ सफाई न होने पर धूल अधिक मात्रा में हवा में उड़ने लगती है तथा श्वसन के द्वारा शरीर में प्रवेश कर स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव डाल सकती है। इस समस्या से बचने के लिए तथा धूल रहित शुद्ध वायु हेतु कुछ प्रयास किए जा सकते हैं। नियमित रूप से घर में झाडू तथा वेक्यूम क्लीनर द्वारा सफाई करना तथा परदों को समय समय पर धोना इत्यादि। यदि घर में कारपेट बिछा हो तो समस्या अधिक होती है क्योंकि इसमें अंधिक धूल तथा गंदगी जमा हो जाती है। पानी अथवा गीली वस्तुओं के कारपेट पर गिरने तथा फर्श से अवशोषित नमीं तथा इसमें लगी गंदगी के कारण कारपेट में बड़ी मात्रा में सूक्ष्म जीव पनपते हैं। इन जीवों में बैक्टीरिया की प्रमुख प्रजातियां इन्टेरोबैक्टीरिया तथा स्टैफिलोकॉकस, सालेमोनेला और शिगैला हैं। इसके अतिरिक्त फंगस या मोल्ड की एल्टरनेरिया, ड्रेक्सलेरा और क्लैडोस्पोरियम जैसी सूक्ष्म प्रजातियां पाई जाती हैं। अतः हर तीसरे महीने कारपेट की शैम्पू द्वारा सफाई करके उसे स्वच्छ, सुन्दर, सुगन्धित तथा धूल रहित करके इन सूक्ष्म जीवों में बचा रखा जा सकता है।

मनुष्य की एक अन्य मूलभूत आवश्यकता भोजन तथा पानी की आपूर्ति जो कि घर के एक महत्वपूर्ण भाग रसोईघर से होती है। रसोई घर में पानी तथा खाद्य पदार्थ रखे जाते हैं तथा पकाकर, खाने के लिए तैयार किए जाते हैं। भोजन पकाते समय भाप बनकर उड़ने वाला तेल तथा रोटी सेंकते समय उससे उठने वाली गंध रसोई घर में हर समय छाई रहती है। उड़ने वाला तेल दीवारों पर जमकर उसे चिकना और काला कर देता है। रसोईघर में कुछ समय पहले तक एकजास्ट पंखे लगाकर तेल युक्त हवा को निकालने का उपाय किया जाता था जो कि आंशिक परिणाम देता था। परन्तु आज रसोई घर के लिए विशेष रूप से बनाई गई चिमनियां तथा हुड रसोई धर में गैस के जलने तथा भोजन पकाने से उत्पन्न प्रदूषकों जैसे कार्बन डाई आक्साइड, कार्बन मोनो आक्साईड, नाइट्रोजन आक्साइड, तेल की फ्यूम तथा पानी की भाप इत्यादि को एक पाइप के रास्ते बाहर निकालने में सक्षम हैं। एक अच्छे डिजाइन तथा उपयुक्त क्षमता का हुड या चिमनी रसोई घर से प्रदुषकों को बाहर कर इसे एक स्वच्छ वातावरण प्रदान कर सकता है। बचे हुए भेज्य पदार्थो की गंध, प्रदूषक तथा तेलीय फ्यूम यदि रसोई घर में रहेगी तो यह स्वास्थ्य के साथ-साथ रसोई घर में रखे उपकरणों तथा अल्मारी आदि को भी खराब कर देगी। चिमनी द्वारा किए गए वेन्टीलेशन से किचन का तापमान तथा आद्रता भी नियंत्रित होती है जिससे सूक्ष्म जीवों की वृद्धि भी नियंत्रित रहती है।

रसोई घर के अतिरिक्त एक और महत्वपूर्ण स्थान हमारा स्नानघर है। स्नानघर में आजकल जल की पहुँच दीवार के अन्दर से जाने वाले पाइपों द्वारा की जाती है। विद्युत ऊर्जा से चलने वाले गरम पानी के गीजर हमारे स्नानघर का एक अनिवार्य अंग बन गए

हैं। स्नानघर में जल बहुतायत में उपयोग किया जाता है तथा यह नाली अथवा पाइप द्वारा बाहर जाता है। इस पूरी व्यवस्था में यदि कहीं से जल का रिसाव होता है तो दीवारें नम हो जाती है और स्नानघर की दीवार के अन्दर या बाहर की सतह पर सूक्ष्म जीवों की प्रजातियां विकसित हो जाती है। इन सूक्ष्म जीवों में बैक्टीरिया की सूडोमोनस (Pseudomonas sps) और ई-कोलाई (E.Coli sps) प्रमुख है तथा मोल्ड सूक्ष्म जीवों में एसपर्जिलस (Aspergillus sps), पेनीसिलियम (Penicillium sps), सूडोमोनस एरूजीनोसा (Pseudomonas aruginosa) और एल्टरनेरिया (Alternaria sps), क्लाडोसपोरियम (Cladesporium sps) पाए जाते हैं। इन सूक्ष्म जीवों की उपस्थिति विभिन्न प्रकार के रोगों के लिए उत्तरदायी है। इसके अतिरिक्त मोल्ड की उपस्थिति में कुछ व्ही ओ सी उत्पन्न होते हैं। इन व्ही ओ सी का प्रकार, फंगस की प्रजाति तथा इसकी वृद्धि के लिए उपलब्ध खाद्य पदार्थ (Substrate) और नमी पर निर्भर करता है। इन व्ही ओ सी में एल्कोहल, ईस्टर, एल्डीहाइड और एरोमैटिक यौगिक होते हैं। कम मात्रा में भी यह व्ही ओ सी एक विशेष प्रकार की दुर्गन्ध उत्पन्न करते है। व्ही ओ सी की मात्रा बढ़ने पर आँखों में जलन, कंजेक्टीवाइटिस, त्वचा पर निशान, श्वसन मे परेशानी, कफ एवं सीने में जकड़न जैसी समस्याएं हो सकती हैं। अतः किसी भी प्रकार से दीवार के अन्दर पानी के रिसाव को नहीं होने देना चाहिए। इसी प्रकार गीजर से निकले गरम पानी की भाप स्नानघर की दीवारों पर जमकर इसे नम करती है। अतः स्नानघर में एक एक्जास्ट पंखा लगाकर अधिक भाप को निकालकर इसकी आद्रता को नियंत्रित किया जा सकता है। इस प्रकार स्नानघर के उपयोग कर्त्ता को आरामदायक वातावरण मिलेगा तथा भाप दीवारों पर नहीं जमेगी जिससे कि सुक्ष्म जीव जैसे फंगस, मोल्ड आदि स्नानघर में पैदा नहीं होगे। इस प्रकार हम घर के विभिन्न भागों की उचित देखभाल, रखरखाव, साफ-सफाई और वेन्टीलेशन का ध्यान रखकर इसकी आन्तरिक वायु गुणवत्ता को उचित स्तर पर बनाए रख सकते है तथा घर में स्थित सुविधाओं का पूरा लाभ उठाकर एक स्वस्थ्य जीवन का आनन्द उठा सकते है।

टेबल - 1
हाँगकाँग के आन्तरिक वायु गुणवत्ता मानक

वायु - प्रदूषक	मानक
कार्बन - डाईऑक्साइड(CO_2)	1000 पी.पी.एम. (औसत समय 8 घंटा)
कार्बन मानोऑक्ाइड (CO)	30000 $\mu g/m^3$ (औसत समय 1 घंटा)
नाइट्रोजन डाईऑक्साइड (NO_2)	200 $\mu g/m^3$ (औसत समय 1 घंटा)
रेस्पाइरेबल पार्टिकुलेट (PM_{10})	180 $\mu g/m^3$ (औसत समय 8 घंटा)
फॉरमेल्डिहाइड (HCHO)	100 $\mu g/m^3$ (औसत समय 1 घंटा)
	50 $\mu g/m^3$ (औसत समय 8 घंटा)
वायु-जनित जीवाणु - बैक्टीरिया	1000 सीएफयू/ m^3 (औसत समय 8 घंटा)

कीटनाशकों का महत्त्व एवं इनके पर्यावरण पदार्थों में प्रक्रमण हेतु एक सरल विधि : क्यूचर्स

पुरुषोत्तम त्रिवेदी, अभिषेक, सत्यजीत, प्रगति, लक्ष्मण प्रसाद श्रीवास्तव
कीटनाशक विषविज्ञान प्रयोगशाला, सी.एस.आई.आर.-भारतीय विषविज्ञान अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

विगत दशकों में विज्ञान की प्रगति के साथ मिलजुल कर कार्य करने की संस्कृति में महत्वपूर्ण बढ़ोत्तरी हुई है क्यों कि यह लाभ दायक है और इसे बढ़ावा मिलना चाहिए। ''इक्कीसवीं सदी अर्थात तकनीकी युग''। इस युग में बिना तकनीकी के जीवन यापन करने की कल्पना व्यर्थ है लेकिन क्या हम मानव जाति ने इस पर विचार किया है कि ज्यादा तकनीकों का प्रयोग हमें और हमारे भूमण्डल को किस गर्त में ढकेल रहा है। आजकल हमारा विश्व एक बहुत बड़ी समस्या से जूझ रहा है और वह है पर्यावरणीय प्रदूषण। पर्यावरणीय प्रदूषण की घटना वर्तमान की नही है वरन् यह तो सदियों से चली आ रही है शायद मानव जन्म से भी पुरानी किन्तु जब मानव प्राणी का उद्भव हुआ, प्रकृति में एक संतुलन बना हुआ था अर्थात प्रत्येक वस्तु स्वच्छ, शुद्ध जल, शुद्ध वायु तथा धरती उपजाऊ थी। वृद्धि एवं क्षय का प्राकृतिक क्रम था और ऋतुओं का भी नियमवद्ध चक्र था। जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ती गयी मनुष्य का कार्यक्षेत्र भी बढ़ता गया और उसके साथ साथ प्रदूषण की गति भी दोगुनी हो गयी। औद्योगिक क्रान्ति के कारण प्रदूषण अत्यन्त तीव्र है। वर्तमान विकास की अन्धी दौड़ का नतीजा है - प्रदूषण। प्रदूषण करने वाले पदार्थों को प्रदूषक कहते हैं। यह प्रदूषण दिन प्रतिदिन हमारे जलवायु, मृदा को नष्ट करता जा रहा है। पिछले कुछ दशकों में रसायन शास्त्र के क्षेत्रों में कल्पनातीत प्रगति होने पर मनुष्य ने नाशक जीवों के नियन्त्रण में भी अनेक महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हासिल की है। कृषि उद्योग विश्व भर में फैला हुआ बहुत बड़ा उद्योग है। मुख्यतः यह उद्योग छोटे एवं मध्यमवर्गीय आय वाले देशों में ज्यादा ही लोकप्रिय है क्यों कि इस कृषि उद्योग की वजह से उस देश की आर्थिक व्यवस्था सुचारू रूप से चलती है। खेती छोटे देशों में आमदनी का सबसे बड़ा कारण है। आज कल कृषि के क्षेत्र में कोई भी देश पीछे नहीं है और फसल उत्पादन बढ़ाने के लिए विभिन्न प्रकार के रसायनों का उपयोग कर रहे है। (चित्र संख्या-1)

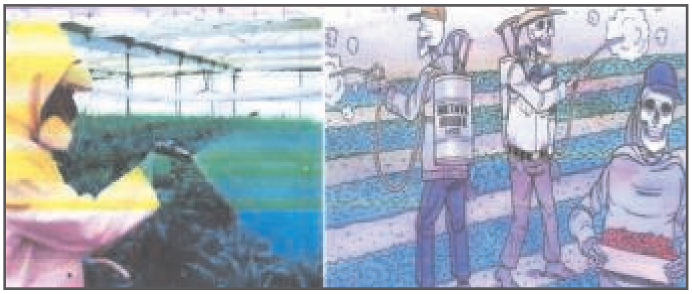

चित्र संख्या 1: मानक माध्यम से कीटनाशक का उपयोग

कीटनाशक एक ऐसा विषैला रसायन होता है जो फसलों को नुकसान पहुंचाने वाले कीटों, कवकों, खरपतवारों, शाकों और सूक्ष्मजीवों को नष्ट करता है। कीटनाशक वह पदार्थ अथवा पदार्थों का मिश्रण है जो नाशी जीवों को नष्ट करता है, उनके प्रभाव को रोकता है, या कम करता है। यह नाशक जीव मानव के सीमित उत्पादक साधनों को कम कर देते है। इनके लिए विभिन्न हानिकारक कीट-पतगें, फंफूदी, खरपतवार, कृन्तक प्राणी, निमेटोड और कुछ सूक्ष्मजीवी उत्तरदायी होते है। ये कीटनाशक हमारी फसल की रक्षा करते है।

इसकी इसी विशेषता के कारण इसका प्रयोग दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है।

कीटनाशकों का प्रयोग सन् 1940 में छोटे एवं मध्यमवर्गीय आय वाले देशों में शुरू हुआ जोकि अब समस्त देशों में पहुँच गया है। पिछले तीन चार दशकों में कुछ नवीन रसायनों का निर्माण तथा उसके उत्पादन से मनुष्य के हाथ में प्रभावी कारक आ गए हैं। ये पदार्थ अनेक वर्गों के विभिन्न नाशक जीवों को रोकने व नष्ट करने में काफी हद तक सफल हैं। इन रसायनों का उपयोग फसल की वार्षिक उत्पादकता को बढ़ाने के लिए किया जाता है जिनका हानिकारक प्रभाव मुख्यतः किसानों में एवं उनके परिवारजनों पर दिखाई देता है। इसका मुख्य कारण इनका कीटनाशकों के सम्पर्क में रहने से त्वचा सम्बन्धी, श्वास सम्बन्धी बीमारियाँ होती है इस समस्त दुष्प्रभावों को देखते हुए यह अनुमान लगा सकते है कि यह रसायन हमारे जीवन और पर्यावरण को नुकसान पहुंचा रहा है। इस समस्या से बचने के लिए हमें इन कीटनाशकों का कम से कम प्रयोग करना चाहिए।

प्रख्यात वैज्ञानिक डा. नारमन बोरलॉग ने कहा ''दुनिया के लोगों को यह तय करना होगा कि हम कृषि रसायनों का प्रयोग बुद्धिमानी के साथ, सही मात्रा में तथा सही तरीके से खाद्य के उत्पादन में करेगें अन्यथा भूखा मरना होगा।''

यह समस्या अब किसी खास देश की समस्या नही रह गयी यह एक वैश्विक मुद्दा बन गया है जिससे बचने के लिए सभी देश एक जुट होकर अपना योगदान देने के लिए तैयार है और वैज्ञानिकों द्वारा भी यह चेतावनी दी गयी है कि अगर समय रहते इस समस्या का कोई हल नहीं निकाला गया तो आने वाले समय में यह प्रदूषण बढ़ता जाएगा। और इसका बुरा एवं हानिकारक प्रभाव सम्पूर्ण विश्व के लोगों के जीवन शैली में देखने को मिलेगा। और हमारा पर्यावरण भी प्रदूषित होगा।

पिछले साठ सालों में कीटनाशकों के प्रयोग में लगभग 2.3 मिलियन टन की वार्षिक बढ़ोत्तरी इस गरज के साथ हुई कि हमारी फसल को अच्छा करते है और वार्षिक उत्पादकता को भी बढ़ाते है जो किसी भी देश की अर्थव्यवस्था और जनसंख्या के लिए अच्छा है। किसी फसल के आधार पर कीटनाशकों की मांग और भी बढ़ गई है परन्तु इसका बहुतायत में उपयोग मनुष्य के स्वास्थ्य, प्राकृतिक संसाधनों और हमारे वातावरण को खतरे में डाल रहा है। (चित्र संख्या 2)

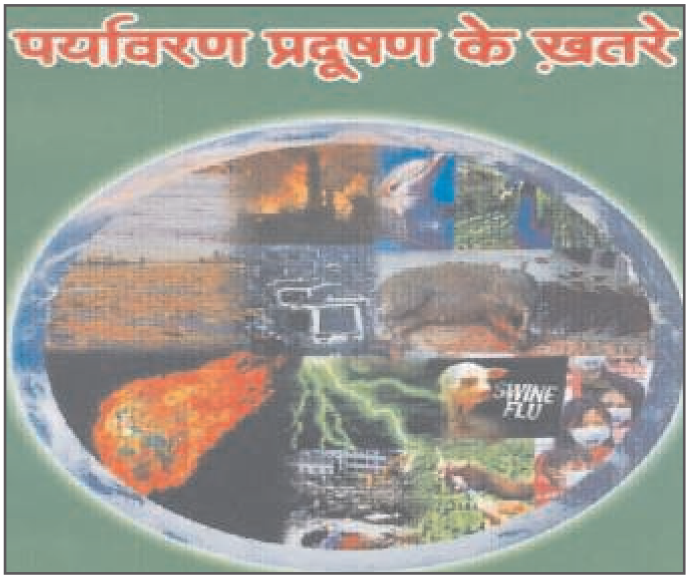

चित्र संख्या 2: पर्यावरण प्रदूषण के खतरे

भारत में कीटनाशकों के प्रयोग का स्तर बहुत ही कम है वर्तमान में कुल फसल क्षेत्रफल के केवल एक चौथाई हिस्से पर ही कीटनाशकों का प्रयोग होता है।

अगर हम इस क्षेत्रफल का दोगुना कर सकें। तो हमारे किसानों को रू. 20,000/-करोड़ की अतिरिक्त आमदनी मिलेगी क्योंकि कीटनाशकों की लागत व लाभ का अनुपात 1:5 होता है। नाशक जीवों के कारण भारत को वार्षिक लगभग रू. 90,000/-करोड़ मूल्य की उपज का नुकसान उठाना पड़ता है। अगर हम इस विशाल हानि से बचना चाहते है तो कीटनाशकों का प्रयोग करके फसलों को कीटों, कवकों, खरपतवारों व बीमारीयों से बचाना होगा। इसलिए कीटनाशक फसल उत्पादन का अभिन्न अंग है साथ ही वे मच्छर जैसे कीटों के रोकथाम करने में मदद करते है और मलेरिया, डेंगू जैसे बीमारियों को रोकते हैं। कीटनाशकों से होने वाले प्रदूषण व असन्तुलन पर विश्व भर में अनेक परीक्षण हो चुके हैं इससे सम्बन्धित आंकड़े एवं विशाल साहित्य उपलब्ध है। परिस्थितियों को प्रभावित करने में मानव काफी चतुर प्राणी हैं लेकिन कीट भी कम नही है।

कीटनाशकों में सबसे जादा उपयोग क्लोरोनीकृत हाइड्रोकार्बन जैसे डी.डी.टी, टेक्साफिन, लिन्डेन का होता है (चित्र संख्या 3)। श्रेष्ठ विदित रसायन डी डी टी केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र को एवं स्नायु तन्त्र को संचालित करने वाली न्यूरोट्रांसमीटर को हानि पहुंचाती है। जिस कारण मस्तिष्क को सम्पूर्ण सूचना नहीं मिल पाती है और शरीर पर उसका नियत्रंण कम हो जाता है।

चित्र संख्या 3 : विभिन्न प्रकार के कीटनाशकों का प्रयोग खाद्य उत्पादन में।

कीटनाशकों से लाभ

इनके प्रयोगों से कीट, कवक आदि पर नियंत्रण करके अनाजों, फसलों को सड़न से बचाकर इनके भण्डारण एवं परिवहन को सुरक्षित करते हैं। कुपोषण, गरीबी दूर कर जन स्वास्थ्य में सुधार द्वारा राष्ट्र की अर्थव्यवस्था बेहतर होती है। मच्छरों पर नियंत्रण करके मलेरिया, डेन्गू एवं चिकनगुनिया जैसे रोगों में बचाव करते है। किसानों के बीज, खाद एवं सिंचाई पर निवेश को सुरक्षित रखती है किसानों की सीमित भूमि पर कृषि उत्पाद में वृद्धि जंगलों का कटाव एवं प्राकृतिक संसाधनों की क्षति पर नियत्रंण करते है। हमारे वातावरण को स्वच्छ एवं स्वस्थ रखने में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान है। इसके प्रयोग से काकरोच, मक्खी को नष्ट करके सार्वजनिक स्वास्थ्य में सुधार लाते हैं। अन्ततः सबसे महत्त्वपूर्ण लाभ है कि इनके प्रयोग से फसल के उत्पाद में 25.50 प्रतिशत की वृद्धिं नाशीजीवों के प्रकोप से बचा कर होती है जिस पर किसी भी देश की अर्थव्यवस्था निर्भर करती है। (चित्र सं.4)

चित्र संख्या 4 : कीटनाशक का विभिन्न क्षेत्रों में उपयोग

कीटनाशकों से हानिः- इसके लगातार उपयोग से स्तनपायी तथा पक्षियों पर काफी दुष्प्रभाव पड़ता है किन्तु समुदाय को नहीं जो थोड़े समय में ही इतनी पीढ़िया बना लेते कि वे किसी भी नवीन रसायन व कीटनाशक के लिए अपने आनुवांशिक अनुकूलन उत्पन्न कर सकते है या फिर उत्परवर्तित होकर इन विषों को प्रभावहीन बना देते है। आधुनिक तरीके से कृषि करने से जहाँ एक ओर उत्पादन में बढ़ोत्तरी हुई वही दूसरी ओर जन स्वास्थ्य पर और पर्यावरण का प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। तथा बहुत से कीटनाशकों के प्रयोग के लिए चेतावनी भी दी गयी है कि उनका उत्पादन, प्रयोग, आयात, निर्यात भी बन्द किया जाए परन्तु इनका उपयोग निरन्तर किया जा रहा है। (चित्र सं.5)

चित्र संख्या 5 : कुछ कीटनाशकों के प्रयोग में प्रतिबन्ध

जिससे फसल के साथ-साथ पर्यावरण पर भी इसका दुष्प्रभाव पड़ रहा है और सन्तुलन बिगड़ा हुआ है और अनेक प्रकार की बीमारीयों का सामना करना पड़ रहा है। सामान्यतः एक तरफ जहाँ जल की गुणवत्ता का प्रत्यक्ष प्रभाव हमारे पर्यावरण एवं स्वास्थ्य पर पड़ता है वहीं हमारी सामुदायिक साफ सफाई व व्यक्तिगत स्वच्छता का प्रभाव हमारे जल संसाधनों की गुणवत्ता पर पड़ता है। आंकड़े दर्शाते हैं कि जहाँ भी फसल व कृषि क्षेत्र में कीटनाशकों का प्रयोग होता है, विभिन्न खाद्य-श्रृखलाओं के द्वारा वह पानी में पहुँच जाता है और उसकी गुणवत्ता को कम करते हैं। अगर हम पर्यावरण की देख-रेख नहीं कर सकते तो हमारी प्रकृति भी हमारा पालन पोषण करने का झंझट नही करेगी। हमारी सबसे पहली प्राथमिकता कीटनाशक के प्रदूषण से संघर्ष करने की होनी चाहिए। जल की गुणवत्ता को बिगाडने वालो में प्रमुख प्रदूषकों में घरेलू अपशिष्ट, औद्योगिक बहिस्राव, कीटनाशक कृषि अपशिष्ट हैं। रसायनों व कार्बनिक पदार्थों के बहिस्राव के द्वारा अनेक जलीय जन्तुओं का जीवन क्रम बिगड़ जाता है।

विषविज्ञान क्षेत्र में जहाँ पर्यावरणीय पदार्थों में विषाक्त पदार्थो की मिलावट व पर्यावरण में विषैले पदार्थो की समय-समय पर जलवायु व मृदा में न केवल उपस्थिति जाँचनी होती है। अपितु इसकी मात्रा का मापन भी आवश्यक होता है इस प्रकार की सभी समस्याओं का निदान विशेष प्रकार के नमूनों में किसी अवांछित पदार्थ रसायन का मापन उसके प्रभाव के आकलन और उस पदार्थ को कितनी मात्रा सुरक्षित होगी, इसके निर्धारण के लिए खाद्य, डेयरी, अपराध विषविज्ञान और रसायन प्रयोग शालाओं के साथ-साथ कार्य किया जाना कितना आवश्यक है इस बात को समझा जा सकता है।

सर्वप्रथम एसी विश्लेषणात्मक विधि की आवश्यकता समझी जाती है वह प्रयोगशाला विधि का विकास करती है जिसके लिए वह वैज्ञानिक सिद्धान्तो पर आधारित तकनीकी प्रयोग करती है विशेष उपकरण एवम् मापदण्ड प्रयोग करती है जो दृढ़ एवं पुष्टकर हो। विधि को विशेषतः जांचते हैं, विधि को अनेक प्रयोगशालाओं के साथ बांटा जाता है, किसी अन्य प्रयोगशाला के साथ विधि की जाँच की जाती है तब

विधि को प्रकाशित किया जाता है। इतने प्रयास करने की आवश्यकता यह है कि जो विधि विकसित हो वह उद्देश्य के लिए उपयुक्त हो इसके लिए मापदण्ड यह है कि विधि अपने में सुदृढ़ हो इसका अपना एक निश्चित दायरा हो। नमूने के साथ अवांछनीय जुड़े पदार्थो का विश्लेषण पर प्रभाव न हो, विधि का अनुकूलन किया जा सके। ये सारे मापदण्ड उसी प्रयोगशाला में मापे जा सकते है जहाँ विधि का विकास किया गया हो। परन्तु इनके अन्तर्गत यह जाचंना भी आवश्यक है कि विधि द्वारा शुद्ध परिणाम प्राप्त हो तथा विधि आसानी से प्रयोग में लायी जा सके। यह सब जांचने के लिए अन्य प्रयोगशाला की सहायता, सहकर्मिता नितान्त आवश्यक है साथ साथ कार्य करने के मुख्य उद्देश्य है। उपभोक्ताओं को ऐसी मापन विधि उपलब्ध कराना जो अचूक एवं शुद्ध तो हो ही साथ ही उनकी पुनरावृत्ति न केवल उसी प्रयोगशाला व विश्लेषण उसी विश्वास के साथ किया जा सके और यह भी जाँचने के लिए इन परिस्थितियों में दूसरी प्रयोगशाला द्वारा परीक्षण में कितना अन्तर आता है। परीक्षण की पुनरावृत्ति में दो कारणो से अन्तर आता है कुछ तो अज्ञात कारणों से दूसरे उन कारणों से जो ज्ञात होते हैं। और वे मापन विधि के अन्तर्गत यथाक्रम अशुद्धि के रूप में निहित होते है। इस प्रकार अनिश्चितता की अशुद्धि के मापन के लिए कुछ अभ्यास आवश्यक होते है उसके लिए एक ही नमूने को लेकर विभिन्न प्रयोगशालाएं उस विशेष मापन विधि का कई बार कई तकनीकी कर्मियों द्वारा परीक्षण करवाते है। एक ही परीक्षण के लिए उपयुक्त विशेष विश्लेषण मापन विधि की पुनरावृत्ति की जाती है जिससे विभिन्न विश्लेषको, तकनीकी कर्मियों द्वारा विभिन्न उपकरण, विभिन्न स्थानों एवं पर्यावरणीय स्थितियों में विभिन्न समय पर किए गए परीक्षणों से प्राप्त परिणामों के अन्तर मापकर विधि की जाँच की जाती है। इसमें योजना ऐसी बननी चाहिए जो सम्भव हो एवं यह जानना भी आवश्यक है कि प्रयोग की जाने वाली विधि में कितनी अनिश्चितता निहित है जिसे दूर कर पाना सम्भव नहीं होगा। सच्चाई यही है कि प्रत्येक विधि में कुछ अनिश्चितता निहित होती है। जिससे पुनरावृत्ति (एक ही प्रयोगशाला) अथवा पुनराभ्यास (विभिन्न प्रयोगशालों में) करने के पश्चात जाना जा सकता है। खाद्य पदार्थों - फल, सब्जियों, जल व अनाजों में कीटनाशक अवशेष की मात्रा का मापन करने के लिए अनेक प्रयोगात्मक विधियां सामने आयी है।

विश्लेषणात्मक रसायन में क्यूचर्स मापन विधि के विकास में विचार करेगे। हम समय-समय पर किसी नयी मापन विधि के विकास एवं उपकरण की आवश्यकता महसूस करते है।

क्यूचर्स क्या है?:- पर्यावरणीय पदार्थों में बहुकीटनाशी अवशेषों के विश्लेषण हेतु तुरन्त, सहज, सस्ती, प्रभावी, मजबूत एवं सुरक्षित प्रक्रिया की स्थापना की गई। इस यह प्रयोगात्मक विधि का उपयोग गैस वर्णलेखन (क्रोमेटोग्राफी) विश्लेषणात्मक तकनीकी के साथ किया गया। यह प्रयोगात्मक विधि क्यूचर्स है। इस विधि के मुख्य पहलू व दृष्टिकोण में एक अच्छी तरह से मिश्रित (होमोजिनाइज्ड) नमूने की एक अपकेन्द्रित नलिका (सेन्ट्रीफ्यूज ट्यूब) में विलायक आम तौर पर एसीटोनाइट्रॉइल के साथ मिलाते है तथा बाद में लवण और मैग्नीशियम सल्फेट के साथ विभाजन प्रक्रिया सम्पन्न कर निष्कर्षण करते है। तत्पश्चात् डिसपरसिव ठोस चरण निष्कर्षण का उपयोग क्लीनअप प्रक्रिया के रूप में करते हैं। जिससे

मेट्रिक्स घटकों को सोरबेन्त द्वारा निकालते है। वर्णलेखन में कई चयनात्मक डिटेक्टरों जैसे इलेक्ट्रॉन कैप्चर डिटेक्टर, फ्लेम फोटोमीतरिक डिटेक्टर इलेक्ट्रोलिटिक कन्डकटीविटी डिटेक्टर, नाइट्रोजन फास्फोरस डिटेक्टर का उपयोग किया जाता है जो आम तौर पर प्रभावी है।

क्यूचर्स की महत्ता:- अपने नाम की ही तरह क्यूचर्स प्रयोगात्मक विधि के प्रत्येक पहलू में होमोजिनाइज्ड नमूने के लिए एक एकल विश्लेषक एक घण्टे में बीस नमूने तैयार कर सकता है। इस विधि में केवल कुछ ही प्रयोगशाला उपकरण आवश्यक हैं जो कि प्रयोगशाला के बहुत के स्थान के साथ-साथ अन्य आवश्यकताओं को कम कर देता है तथा गैस वर्णलेखन तकनीकी द्वारा सैकडों कीटनाश्कों के आमतौर पर 90-100 प्रतिशत वसूलियाँ, 5-10 प्रतिशत सापेक्ष मानक विचलन प्राप्त होता है। उपयोगिता, प्रदर्शन एवं अवधारणाओं की सुविधाओं का प्रदर्शन के लिए क्यूचर्स या उसके संसाधनों पर कई लेख प्रकाशित किए गए। कीटनाशक अवशेषों के विश्लेषण में पहली बार क्यूचर्स को विशेष रूप से सूचीबद्ध कार्यरत माना गया। क्यूचर्स अभ्यास दृष्टिकोण से प्रयुक्त विभिन्न संसोधनो के बीच छोटे मतभेद है जो मेट्रिक्स घटक, प्रयोगशाला उपकरण, विश्लेषणात्मक उपकरणों और विश्लेषक वरीयताओं पर निर्भर करता है।

नमूना आकार को कम करने के लिए क्यूचर्स दृष्टिकोण का एक अति महत्वपूर्ण पहलू है बड़ा नमूना मूल नमूने को प्रतिनिधि होता है इसमें 10-15 ग्राम के नमूने का उपयोग विश्लेषण के लिए किया जाता है। उच्च नमी फल सब्जियों एवं पेय पदार्थों के लिए 10-15 ग्राम के नमूने का उपयोग विश्लेषण के लिए किया जाता है। उच्च नमी फल सब्जियों एवं पेय पदार्थों के लिए 10-15 ग्राम मात्रा का नमूना एक 50 मिली लीटर अपकेन्द्रित नलिका में लेते है जिसमें विलायक व नमूना के बीच पर्याप्त स्थान शेष रहता है। इनको मिलाकर उनमें स्तर का विभाजन अपकेन्द्रीकरण विधि (सेन्ट्रीफ्यूज) से करते है इस विधि में पसंदीदा विलायक एसीटोनाइट्राइल है, विलायक व नमूने में अच्छी तरह विभाजन के लिए नमक मिलाया जाता है तथा नमूने से नमी की मात्रा को कम करने के लिए मैग्नीशियम सल्फेट मिलाते है। परन्तु इथाइल एसीटेट का उपयोग भी विलायक के रूप में किया जाता है इथाइल एसीटेट गैर वसीय खाद्य-पदार्थो के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है किन्तु वसायुक्त पदार्थों के साथ जेल पारगमन वर्णलेखन विधि का प्रयोग करते है। इथाइल एसीटेट पूरी तरह से पानी के साथ विलेयशील नहीं है। कुछ कीटनाशकों जैस क्लोरोथेलोनिल, फालपेट, कैप्टन, डाइकोफाल एसीटोनाइट्राइल की तुलना में एथाइल एसीटेट में अधिक स्थिर है। एसीटोन कम से कम बेहतर विलायक है और लवण के साथ इसकी विभाजन प्रक्रिया भी बदत्र है। तथा निष्कर्षण प्रक्रिया के उपरान्त एथाइल एसीटेट के कार्बनिक नमूने के निष्कर्षण से कार्बनिक अम्ल, लिपिड की अशुद्धता को खत्म करने के लिए पी.एस.ए. (प्राइमरी सेकेण्डरी एमीन) का प्रयोग सोरबेन्त की तरह करते है। (चित्र सं. 6 व 7)

10 ग्राम नमूने को 10 एमएल एसिटोनाटराइल के साथ अपकेन्द्रित नलिका में जोड़े

↓ और अच्छे से मिला दे

4 ग्राम मैग्नीशियम सल्फेट और 1 ग्राम सोडियम क्लोराइड जोड़े

↓ और 1 मिनट के लिए अच्छे से मिला दे

10 मिनट के लिए 8000 आरपीएम पर अपकेन्द्रित करें

↓

1एमएल उपरी सतह को छोटी अपकेन्द्रित नलिका में निकालें और 150 मिलीग्राम मैग्नशियम सल्फेट तथा 50 मिलिग्राम प्राइमरी सेकेन्डरी अमीन जोड़े

↓ और 1 मिनट के लिए अच्छे से मिला दे

पुनः 10 मिनट के लिए 8000 आरपीएम पर अपकेन्द्रित करें

↓

अब एसिटोनाटराइल के निष्कर्षित नमूने को जी सी नलिका में विश्लेषण के लिए स्थानांतरित करें

चित्र सख्याः 6 क्यूचरस प्रयोगविधि का प्रवाह आरेख

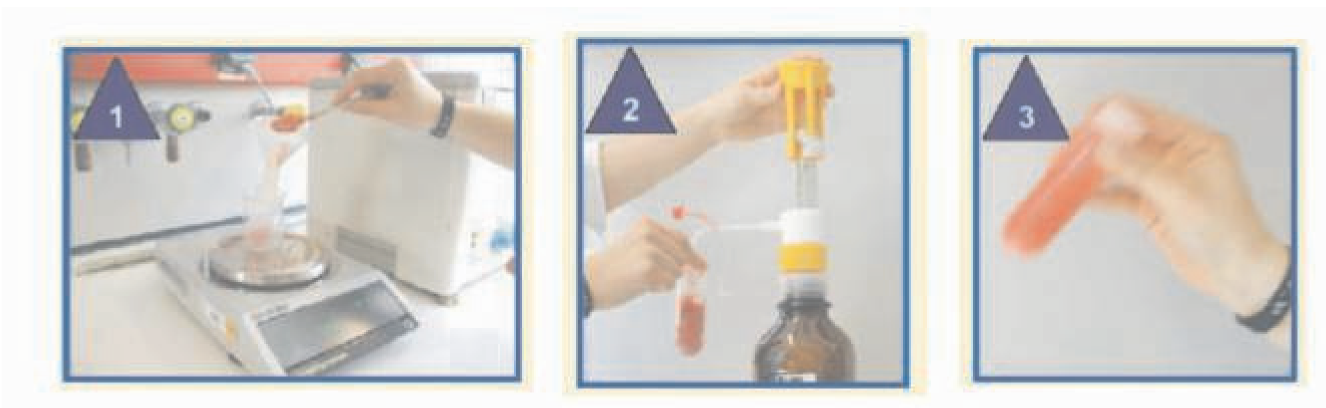

fp= l[;k- 7 D;pjl i;kxfof/k dk fp= vkj[k
QUECHERS METHOD

तथा अन्तिम निष्कर्षण को गैस वर्णलेखन की विधि द्वारा दर्शाते है तथा गणना के द्वारा कीटनाशक अवशेषों की मात्रा का आंकलन करते है। इसका धनात्मक परीक्षण गैस वर्णलेखन मासस्पेक्ट्रोफोटोमीटर द्वारा करते है।

कीटनाशकों से होने वाली हानि से बचने के उपाय - 2004 में स्टाकहोल्मस ने एक ऐसा नियम लागू किया जिसमें लोगों को विषैले एवं हानिकारक कीटनाशकों के प्रयोग पर मनाही की गई। इस नियम के तहत आरगेनोक्लोरीन आधारित कीटनाशकों पर रोक लगाई गई क्योंकि यह कीटनाशक अन्य कीटनाशकों से ज्यादा स्थायी होते है। संयुक्त राष्ट्र की खाद्य एवं कृषि संस्था विश्व को इस परेशानी से निजात दिलाने के लिए सबसे आगे खड़ी होती नजर आती है। इस संस्था का मुख्य उद्देश्य विश्वभर में कीटनाशकों रहित खेती कराना है। इस संस्था ने प्रकार की नई तकनीकें इजाद की है जिसको इस्तेमाल में लाने से

विषैले रसायनों का उपयोग कम किया जा सकता है। इस संस्था ने वर्ष 2011 में ''बचाओ और उगाओ'' नामक आन्दोलन को आरम्भ किया जिसके अन्तर्गत लोगों को कीटनाशक के हानिकारक प्रभावो से अवगत कराया गया उन्हें इन रसायनो के कम उपयोग करने की सलाह दी गई। लोगों को यह जानकारी भी दी गई कि किस प्रकार यह कीटनाशक हमारे और हमारी पृथ्वी जीवन व पर्यावरण के लिए हानिकारक है। कीटनाशको का उपयोग केवल शान्त वातावरण में ही करना चाहिए न कि आँधी तूफान के समय रासायनिक कीटनाशकों पर होने वाले शोध कार्यो को बढ़ावा देना चाहिए। कीटनाशकों के स्थान पर गुगल का धुँआ, नीम का तेल जैसे प्राकृतिक कीटनाशकों का उपयोग करना चाहिए तथा सिर्फ मान्यता प्राप्त कीटनाशकों का ही प्रयोग करना चाहिए। किसानो के लिए हानिकारक कृषि रसायनों से सुरक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए। लोगों को इस समस्या से बचाने के लिए कई समाज सेवी संस्थाए लोगों की मदद को आगे आयी है यह संस्थाए गावों और पिछड़े हुए क्षेत्रों में जहाँ खेती होती है, जाकर लोगों को खेती में उपयोग होने वाली नई तकनीकी के बारे में बताती है। यह संस्थाए जगह-जगह पर शिविर लगाकर किसानों को प्रशिक्षित करती है। (चित्र सं. 8)

उन्हे कीटनाशकों के इस्तेमाल का सही व

चित्र सं. 8 विभिन्न माध्यमों से किसानो और उनके परिवारों को प्रशिक्षण कार्यक्रमों द्वारा जानकारी

सुरक्षित तरीका सिखाया जाता है क्यों कि किसान कीटनाशकों का उपयोग करते समय कोई सावधानी नही बरतते और इन विषैले रसायनों के सम्पर्क में आ जाते है जो उनके स्वास्थ्य को हानि पहुंचाते है। इन संस्थाओं ने कई प्रकार की दूरभाष सेवाएं शुरु की जिसकी मदद किसान कभी भी ले सकते हैं इस प्रकार की सेवाओं का लाभ किसान किसी भी प्रकार की कृषि सम्बन्धी सलाह के लिए उठा सकते है।

नए कीटनाशकों की आवश्यकताः-

कृषि के बदलते तौर तरीके तथा कीट सम्बन्धी समस्याओं के कारण कृषि के नए एवं अधिक कीटनाशकों की निरन्तर आवश्यकता है इस निरन्तर बदलती हुई जरूरत को पूरा करने के लिए कीटनाशक उद्योग ऐसे रसायन खोजने की दशा में लगातार कार्य कर रहे है जो कम मात्रा में उच्च प्रभावशीलता के साथ कम से कम जोखिम की समस्या पैदा करे। पिछले कुछ समय से भारत में पर्यावरण मित्र एवं फसल विशिष्ट कीटनाशकों, जिनकी मात्राओं में जरूरत पड़ती है तथा उनका पर्यावरण में कम प्रभाव पड़ता है, का प्रयोग बढ़ा है। विश्व भर में जैविक खेती का प्रचलन भी जोरो पर है और भारत में भी इसे बहुस्तर पर लागू करना होगा जिससे हमारा पर्यावरण स्वच्छ एवं सुरक्षित रहे और जिसका जन स्वास्थ्य व खाद्य सुरक्षा पर कोई हानिकारक प्रभाव न पड़े। (चित्र सं. 9)

यह आवश्यक है कि साथ-साथ कार्य करने की

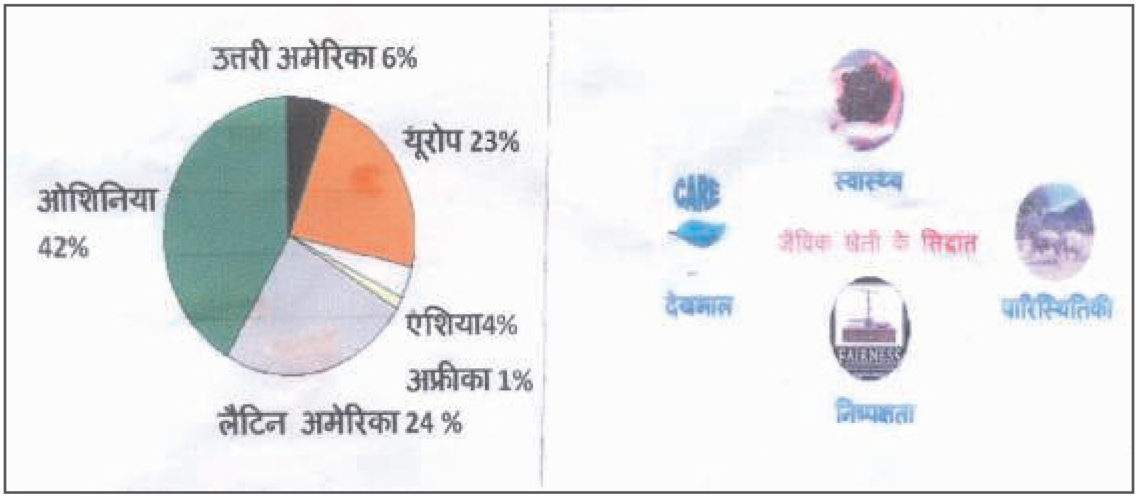

चित्र संख्या : 9 जैविक खेती का अनुपात

संस्कृति को हमारे देश में हर वैज्ञानिक इकाई के स्तर पर बढ़ावा मिले। यह दर्शाता है कि भारतीय किसान कीटनाशकों का प्रयोग सोच विचार कर नही कर रहे है बल्कि यह अच्छे तरह जानते है कि कितनी मात्रा और कैसे प्रयोग किया जाना चाहिए। जिससे कि कीटों की रोकथाम हो और अवशेष स्वीकृत सीमाओं के अन्दर रहे। कीटनाशक निरन्तर समीक्षा के अन्तर्गत रहते है तथा नवीनतम अन्तराष्ट्रीय वैज्ञानिक जानकारी के अनुसार इन्हें प्रतिबन्धित या सीमित किया जाता है।

गहरू परिसर

सी.एस.आई.आर.-भारतीय विषविज्ञान अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

(वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधार परिषद्)

उपलब्ध सेवाएं :

- स्वास्थ्य तथा पर्यावरण अनुवीक्षण
- उपभोक्ता सुरक्षा
- विषाक्तता परीक्षण
- विश्लेषणात्मक सुविधाएं
- सूचना आंकड़े संकलन

  पर्यावरण प्रभाव का आंकलन
- परामर्शदाता
- हानिकारक व्यर्थ औद्योगिक कचरे का निस्तारण
- पर्यावरण प्रबंध योजना
- व्यावसायिक कर्मियों का स्वास्थ्य स्तर
- आपदा प्रबंधन हेतु तैयारी

विस्तृत जानकारी हेतु संपर्क करें :

निदेशक

सी.एस.आई.आर.-भारतीय विषविज्ञान अनुसंधान संस्थान

पोस्ट बाक्स नं. 80, महात्मा गाँधी मार्ग, लखनऊ - 226 001

दूरभाष : 2627586, 2621856, 2611547, 2613786

फैक्स नं० : +91-522-2628227

ई० मेल : iitrindia@iitrindia.org